Jagvallabh P.
Malad (W)
2072/2015
का.व.5

श्रीपिण्डनिर्युक्ति Summary

[कर्ता – भद्रबाहुस्वामी
टीका – मलयगिरि सू. म.]

DATE : / / 1

टीकाकार का मंगलाचरण

★ निर्युक्तयः न स्वतन्त्रशास्त्ररूपाः किन्तु तत्तत्सूत्रपरतन्त्राः, तदुत्पत्तिआश्रयणात्, तथाहि सूत्रोपात्ता अर्थाः स्वरूपेण सम्बद्धा अपि शिष्यान् प्रति निर्युज्यन्ते याभिः ता निर्युक्तयः

★ दशवैकालिक सूत्र की निर्युक्ति भद्रबाहुस्वामी द्वारा रची गई। उसमें ५वें पिण्डैषणा अध्ययन की निर्युक्ति बड़ी होने से स्वतंत्र ग्रंथ की तरह पिण्डनिर्युक्ति नाम से स्थापित की गई।

(गाथा 1) ★ पिंडनिर्युक्ति के ८ अधिकार – (i) उद्गम दोष (ii) उत्पादना दोष (iii) एषणा दोष (iv) संयोजना (v) प्रमाण (vi) इंगाल (vii) धूम (viii) कारण

गोचरी – ४७ दोष

४२ दोष गोचरी | ५ मांडली

गवेषणा एषणा | ग्रहणैषणा | ग्रासैषणा

उद्गम (16) | उत्पादन (16) | एषणा (10) | संयोजनादि (5)

★ उद्गम – जो दोष प्रथम से ही गृहस्थ द्वारा लगाए जाते हैं

★ उत्पादन – गोचरी प्राप्त करने के लिए साधु द्वारा किए जाते हैं

★ एषणा – लेते समय दोनों द्वारा किए जाते हैं

(गाथा 2) ★ पिंड के एकार्थक शब्द

(गाथा 3-4-5) ★ पिंड को निक्षेप द्वार से समझाते हैं।

[गाथा 6 भा. 1-6] ★ नाम निक्षेप – नाम चार प्रकार के – गौण, समयज, उभयज, अनुभयज

(i) गौण – जो नाम गुण से निष्पन्न हो, अन्वर्थ युक्त, व्युत्पत्तिनिमित्त वाला।

व्युत्पत्तिनिमित्त तीन – ⓐ द्रव्य (e.g. शृंगी, दन्ती) ⓑ गुण (e.g. सुवर्ण, शुक्ल) ⓒ क्रिया (e.g. पाचक, वाचक)

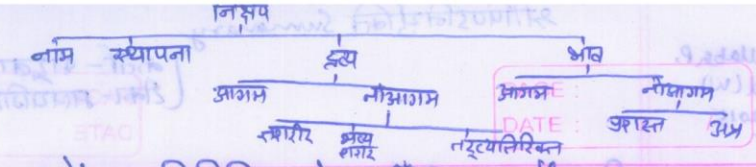

इन तीनों व्युत्पत्तिनिमित्त को गुण कहा जाता है।

जाति- जो नाम कहीं से चल रहे हैं, इनकी व्युत्पत्ति होती है किंतु वह उस नामक वस्तु में घटती नहीं है eg. गो=गच्छतीति गौः, यह नाम रूढ हो गया है। जातिवाचक नामों का गौण नाम में ग्रहण नहीं करना

(ii) समयज- शास्त्र प्रसिद्ध, अन्वर्थ रहित। eg. पानी को शास्त्र (आचारांग में) पिंड कहा है, पिंड= कठिन (solid) द्रव्यों का एक जगह समूह, यह व्युत्पत्ति पानी में नहीं घटती है, इसलिए पानी को पिंड कहना समयज नाम

(iii) उभयज- शास्त्र प्रसिद्ध, अन्वर्थ युक्त। eg. गुडपिंड, मोदकपिंड

(iv) अनुभयज- शास्त्र अप्रसिद्ध, अन्वर्थ रहित। eg. कोई पुरुष का 'पिंड' नाम।

[गा.7 भा.7]

★ स्थापना निक्षेप

स्थापना	
सद्भाव	असद्भाव
जिसमें वस्तु की आकृति दिखे eg. शतरंज में हाथ पैर आदि बनाकर इंद्र की स्थापना करना।	जिसमें वस्तु की आकृति न दिखे eg. अक्ष, कोड़ी

eg. काष्ठ-पुस्तक-पाषाण पर आलेखन, चित्रकर्म में गुरु की स्थापना

★ चित्रकर्म- एक बिंदु के आलेखन में 'एष पिण्डः' यह असद्भाव स्थापना, प्रभूतद्रव्यसंश्लेषाकारादर्शनाद्। एक बिंदु में 'एष गुडपिण्डः' यह सद्भाव स्थापना

(गाथा 8) ★ द्रव्यपिंड दो प्रकार (i) आगम (ii) नोआगम

★ वर्तमान में कोई व्यक्ति 'पिंड' का ज्ञाता हो किंतु उसमें उपयुक्त न हो वह आगम से द्रव्यपिंड

★ नोआगम से 3 प्रकार- (i) ज्ञशरीर द्रव्यपिंड- कोई व्यक्ति 'पिंड' का ज्ञाता था अभी वह मर गया था मोक्ष में गया, उसका शरीर (मृतक) ज्ञशरीर। उस शरीर की अपेक्षा से 'पिंड' ज्ञशरीरद्रव्यपिंड क्योंकि भूतकाल में वह शरीर पिंड-ज्ञान का कारण था।

(ii) भव्यशरीरद्रव्यपिंड - कोई बालकादि, जिसे 'पिंड' का ज्ञान नहीं है किंतु भविष्य में अवश्य होने वाला है।

(गा. 8-9) (iii) व्यतिरिक्त - 3 प्रकार सचित्त, अचित्त, मिश्र। कोई भी वस्तु पहले सचित्त, फिर धीरे-धीरे मिश्र, फिर अचित्त होती है, इसलिए ऐसा क्रम कहा है। प्रत्येक के नौ भेद - पृथ्वी, अप्, तेउ, वाउ, वनस्पति, बे-ते-चउ-पंचेंद्रिय।

(गा. 10-11) ★ पृथ्वीकाय (i) सचित्त - दो प्रकार (a) निश्चय से - ~~रत्न~~ रत्नप्रभादि पृथ्वी, महापर्वत, मेरु पर्वत आदि का मध्य भाग (b) व्यवहार से - निराबाध अरण्य भूमि आदि।

(गा. 12) (ii) मिश्र - क्षीरद्रुम के नीचे, ग्राम-नगर से बाहर के रास्ते में, हल से विदारित भूमि, अब जल से आर्द्र भूमि (कुछ देर मिश्र फिर अचित्त), इंधन से जली हुई भूमि।

उत्कृष्ट-मध्यम - जघन्य इंधन से जली हुई पृथ्वी क्रमशः एक-दो-तीन पहर तक मिश्र रहती है, फिर अचित्त।

(गा. 13) (iii) अचित्त - परकाय और स्वकाय शस्त्र से हत पृथ्वी वह अचित्त।

परकाय - शीत, अग्नि, अम्ल (व्यंजन), क्षार, क्षत्र (करीषविशेष), स्नेह (घी, तेल), ऊष्ण (सूर्यताप रूप)।

स्वकाय - ऊष (उखर क्षेत्र से उत्पन्न लवण मिश्रित रज विशेष), ऊष्ण (पृथ्वीकाय के ताप रूप)

★ अचित्तता प्रकार से (i) द्रव्य से - स्वकाय या परकाय शस्त्र से अचित्त

(ii) क्षेत्र से - क्षारादि क्षेत्र में उत्पन्न पृथ्वी को मधुरादि क्षेत्र में उत्पन्न पृथ्वी के साथ मिलाना, यहाँ क्षेत्र की प्रधानता है। अथवा कोई पृथ्वी

(ii) भाव - वर्ण, गंध, रस, स्पर्श पूर्व के छोड़कर, नए ग्रहण करना।

को सौ योजन दूर ले जाने पर आहारादि भिन्न होने से वह अचित्त होती है। इसी प्रकार सौ योजन दूर ले जाने पर अप्, तेउ, वाउ वनस्पति भी अचित्त हो जाते हैं। eg. सौ योजन दूर से लाई हुई हरडे आदि औषधि साधु ग्रहण करते हैं।

(iii) काल से - स्व आयु क्षय होने पर अचित्त।

(गा. 14-16) ★ अचित्त पृथ्वी से साधु के प्रयोजन बताते हैं - Fungal infection पर लेप के लिए भीती माटी, केदार, तरिका सादि। लवण का भोजन में उपयोग Fungal infection पर ॐ गन्धपाषाण का उपयोग। सोने-उठने-बैठने - काउसग्ग के लिए भूमि। हगल के लिए पाषाण - मिट्टी के ढेफे। etc

(गाथा 16-17) ★ अप्काय (i) सचित्त - दो प्रकार (a) निश्चय से - घनोदधि, घनवलय (नरक पृथ्वी के नीचे में रहा पानी), बरफ, लवणसमुद्रादि का मध्य भाग, पद्मद्रहादि का मध्यभाग। (b) व्यवहार से - कुएँ, बावी, तालाब का पानी

(गा. 18) (ii) मिश्र - तीन उकाले से कम उकाला हुआ पानी, बारिश में जो पानी ग्राम-नगर की भूमि पर गिरता है वह। ग्राम-नगर के बाहर यदि थो बारिश हो तो मिश्र। यदि बहुत बारिश हो तो पहले गिरा हुआ पान मिश्र, फिर बाद का सचित्त। चावल को धोवन पानी स्थिर होने के बाद जब एकदम स्वच्छ न हो तब मिश्र, एकदम स्वच्छ होने पर अचित्त।

(गा. 19) ★ चावल के धोवण पानी के तीन अलग-अलग मत बताते हैं - (i) वह पानी दूसरी तपेली में खाली करने पर पहली तपेली पर जो पानी की बूंदें हैं, वे सूखे तब तक मिश्र, सूखने के बाद अचित्त।

(ii) वह पानी दूसरे भाजन में खाली करने पर जो बुलबुले उत्पन्न हुए, वे जहाँ तक रहे, तब तक मिश्र, वे खत्म हो जाए, तब अचित्त।

(iii) पानी से धोने के बाद चावल पकाए जाएँ। जब तक चावल पके नहीं तब तक मिश्र, जब पक जाएँ, तब अचित्त।

(गा.20) ★ इन तीनों में दूषण कहते हैं - तीनों में काल परिमाण का कोई नियम संभव नहीं है। (i) यदि वह पानी सूखे घड़े में लिया तो पानी जल्दी सुख जाएगा, इस कारण मिश्र पानी को अचित्त का मानकर ग्रहण करेंगे। यदि पानी गीले घड़े में खाली किया तो पानी बहुत देर तक नहीं सूखेगा, इससे अचित्त पानी को भी मिश्र मानकर ग्रहण नहीं करने की आपत्ति आएगी।

(ii) यदि तेज हवा चल रही है, तो बुलबुले जल्दी खत्म हो जाएँगे, इससे पहला दोष होगा। यदि हवा नहीं है तो बुलबुले बहुत देर तक रहेंगे, इससे दूसरा दोष।

(iii) यदि चावल बहुत देर तक पानी में रखे फिर तेज अग्नि पर पकाए तो जल्दी पक जाएँगे, इससे पहला दोष। यदि चावल तुरंत ही पानी से निकाल कर कम अग्नि से पकाए तो बहुत देर तक नहीं पकेंगे, इससे दूसरा दोष।

(गा.21) ★ इसलिए गा.18 के Last Point को स्वीकारना।

(गा.22) (ii) अचित्त अप्काय - पृथ्वीकाय जैसे ही स्व-पर काय शस्त्र से परिणत द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से जानना। यदि पानी दही-घी-तेल के घड़े में लिया तो उसकी ऊपर तर स्थूल, मध्यम-जघन्य होने पर

क्रमशः वह एक-दो-3 पहर तक मिश्र, फिर अचित्त।

(गा.23) ★ अचित्त जल का प्रयोजन - घाव पर सेक करना, तृषा के लिए पीना, हाथ कौरह धोना (कारणवश), वस्त्र धोना (मात्र में एकबार वर्षा ऋतु के पहले), शुद्धि करना, पात्रे धोना आदि

(गा.24) ★ शेषकाल में वस्त्र धोने के दोष - (i) चारित्र बकुश बनता है (शोभा करने वाला) (ii) ब्रह्म विनाश - अच्छे कपड़े से विरूप भी सुरूपवान् लगता है, इसलिए स्त्रियां उसे प्रार्थना करती हैं (iii) यदि वह ब्रह्म विनाश नहीं करता है तो भी लोक-निंदा होती है कि यह कामी है, इसलिए नए-नए कपड़े पहनता है (iv) संपातिम जीवों की हिंसा (v) पानी के रेले से जीव हिंसा।

(गा.25) ★ वर्षाकाल के पहले वस्त्र नहीं धोने के दोष - (i) मैल के साथ भेज लगने से वस्त्र भारी हो जाते हैं (ii) यदि उस समय भी नहीं धोए तो वस्त्र फट जाते हैं (iii) पानी/भेज से पनक लीलण-फूल उत्पन्न हो जाती है (iv) भेज वाले ठंडे वस्त्र पहनने से अजीर्ण (v) मैले वस्त्र पहनकर गोचरी लेने जाए और वारिश हो तो अप्काय विराधना।

जो दोष गा-24 में कहे थे वे सूत्र की नीति से यहाँ संभव नहीं है। संपातिम त्रस जीवों की विराधना जयणा से रोकी जा सकती है।

(गा.26) ★ जघन्य से पात्र नियोग झोली पल्ले आदि अवश्य निकालना चाहिए उत्कृष्ट से सभी उपधि।

(गा.27) ★ आचार्य, ग्लान आदि की उपधि बार-बार निकालना चाहिए क्योंकि आचार्य के मैले कपड़े से प्रवचन निंदा और ग्लान को अतिग्लानता होती है।

(आ.29 भा.8-10) ★ पात्र नियोग, तीन पट्ट (संथारा, उत्तरपट्टा, चौलपट्टा), दो निषद्या (ओघे की), रजोहरण (पडगी), मुहपत्ति ये रोज काम में आने वाली उपधि हैं इसलिए ये सविश्रमणीय उपधि हैं अर्थात् इनके काप में विश्राम करना योग्य नहीं है।

(आ.29,30,31 भा.11 ★) विश्रमणीय उपधि कहते हैं- कांप निकालने के काल में सभी जू निकालने के लिए जो वस्त्र उपयोग किए बिना रखे जाते हैं, वे विश्रमणीय। दो कपड़े ऐसे के, एक बकामती। इनमें एक कपड़ा अंदर, उसके ऊपर दूसरा, उसके कामती इस तरह उपयोग किया जाता है।

विश्रमण विधि - रात्रि में सोते समय तीन दिन अंदर वाला कपड़ा (जिसमें जू हैं) वह बाहर पहने और बाहर वाला अंदर, जिससे जू उस कपड़े से निकलकर अंदर वाले कपड़े में आ जाए, उस कपड़े पर काम प्रेत्व होने से जू जल्दी बाहर निकल सकते हैं। फिर तीन दिन उस कपड़े को रात में संथारे के पास रखे, जिससे जू उसमें से निकलकर संथारे में आ जाए, संथारे से जू निकालना। फिर एक दिन रात में उसे ऊपर चरकाए, नीचे स्वयं के शरीर को अड़े, जिससे जू शरीर की तरफ आएगी, उसे निकाले। इस प्रकार तीन दिन बाद दृष्टि से देखने पर यदि जू की शंका हो तो एक दिन उसे शरीर पर ओढ़ ले यदि जू होगी तो काटने से पता चलेगा। यदि जू हो तो फिर से यह विधि करना, न हो तो काप निकालना।

मतान्तर - अन्य आचार्य कहते हैं - कि 3 दिन आवश्यक नहीं है, एक-एक दिन पर्याप्त है।

(गा.32) ★ जल ग्रहण विधि - ~~पात्र~~ के घर की छत पर से गिरता पानी नीवोदक। वह पानी धूल-धूएँ - सूर्य के ताप से अचित्त होता है। उस ~~पीने~~ पानी का ग्रहण करना, बारिश रुकने पर ग्रहण करना क्योंकि बारिश बरसती होने पर वह मिश्र होता है। कुछ आचार्य - हमारे पात्र में ग्रहण करना, कुछ आचार्य - गृहस्थ के भाजन में ग्रहण करना। ग्रहण कर उसमें क्षार डालना जिससे वह 3 प्रहर बाद सचित्त न हो।

(गा.33) ★ काप का क्रम - पहले मुक्त, फिर तपस्वी, ग्लान, शैक्षक, स्वयं का काप निकालना।

(गा.34) ★ प्रक्षालन विधि - वस्त्र को शिला पर नहीं कूटना, धोने से नहीं कूटना, हाथ से पिसना। ईस्त्री नहीं करना।

परिभोग्य वस्त्र छाया में सुखाना क्योंकि जू की संभावना है।

अपरिभोग्य आतप में सुखाना

(गा.35) ★ तेउकाय - 3 प्रकार ~~के~~

(गा.36) (i) सचित्त - निश्चय - ईटभट्टी, कुम्भकार की भट्टी का प्रत्यभाग, विद्युत, उल्का व्यवहार - अंगारे आदि

(ii) मिश्र - करीष अग्नि, गोबर की अग्नि, आधी बुझी हुई अग्नि।

(गा.37) (iii) अचित्त - पके हुए चावल, शाक, गरम पानी, राख आदि। इनमें अग्नि नहीं है किंतु ये अग्नि के कार्य हैं। अग्नि के कार्य होने से शब्द द्वारा इनमें अग्नि कल्प का व्यपदेश करते हैं जैसे - दग्धो भक्षितस्तेऽनेन इसलिए इन्हें अचित्त अग्निकाय कहते हैं। राख, सुई, ~~ऊ~~ उस्तरा,

उंगल (ईंट के टुकड़े) भी अग्नि से पकाए जाते हैं।
प्रयोजन - भोजनादि में। द्रव्यादि चार भेद से अग्नि यहाँभी जानना।

★★ वायुकाय ३प्रकार

(गा.38) ★ (गा.29) (i) सचित्त - निश्चय - नारक पृथ्वी के पास में वलय वात्ता वायु, घनवात, तनवात, अतिशय बरफ गिरने पर और अतिशय बादल होने पर जो वायु वे सब सचित्त।
व्यवहार - पूर्व दिशा का वायु आदि। (iii) अचित्त - आक्रान्तादि ६प्रकार से उत्पन्न वायु अचित्त होता है।

(गा.५०) ★ आक्रान्तादि ६प्रकार - ⓐ कीचड़ में फँसा हुआ वायु ⓑ मुँह में हवा भरकर फुग्गे में भरना ⓒ तिल पिसने की चक्की में ⓓ शरीर में रहा वायु ⓔ वस्त्रादि निचोड़ने पर वस्त्र से निकलता वायु,

(गा.५१) (ii) मिश्र - बकरी आदि पशु × मस्तक ठया दो × अपानद्वार थिगड़े से बंद करना × मुह
(आ.१२-१३) घोप × पेटबड़ा = वृति।
वृति में मुह से भरी वायु अचित्त, उसे तुरन्त बांध दो। फिर पानी में अच्छेकर डालना। वो १००हाथ तक जाए उतनी देर वायु अचित्त, अगले १००हाथ में मिश्र, अगले १००हाथ में उसके बाद सचित्ता एक ही जगह रहे तो अनुमान से १०० हाथ जाने प्रमाण काल ले लेना।
वस्ति = विवृत मुख वाली वृति। उसमें मुख से वायु भरकर स्थल में रखो।
यहाँ काल २प्रकार - स्निग्ध, रूक्ष दोनों के ३प्रकार उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य

	उत्कृष्ट	मध्यम	जघन्य	
स्निग्ध	७वर्ष/२/३	२/३/४	३/४/५	पहर तक अ./मि./स.
रूक्ष	३/४/५	२/३/४	१/२/२	दिन तक ५

(गा.42) ★ अचित्त वायु के प्रयोजन - नदी उतरने में वृति खिस्ते, कोई रोग में वृति से वायु अपान में डाला जाता है, यहाँ पानी की जगह में जल और इजप्रीन पर स्थल प्रमाणे अचित्त, मिश्र, सचित्त जानना और यतना से मि.स. का परिहार करना। पानी में मि.स. का त्याग अशक्य होने से प्रायश्चित्त करना

(गा.43-45) ★ वनस्पतिकाय सचित्त, मिश्र, अचित्त

(i) सचित्त ⓐ निश्चय - अनन्तकाय ⓑ व्यवहार - निंबु, आम के पेड़ आदि

(ii) मिश्र - आधी सुखी हुई वनस्पति, आया आदि।

(iii) अचित्त = पुष्प, कोमल फल, व्रीहि आदि सभी वनस्पति संपूर्णतया सुखने पर

(गा.46) ★ अचित्त वनस्पति के प्रयोजन - शय्या, पाए, दांडा, कपड़े, कबली, औषध, भेषज।

औषध = केवल एक वनस्पति अथवा अन्नरूप योगी

भेषज = दो आदि का चूर्ण अथवा विकृपयोगी

(गा.47) ★ त्रसकाय पिंड - ~~इयालर~~ स्वस्थान - सिर्फ द्वीइंद्रिय या तेइन्द्रिय - पंचेंद्रिय का पिंड ~~तीन~~ उपकार

(i) सचित्त - यदि सभी जीव इन्द्रियां हो,

(ii) मिश्र - यदि कोई मरगए हो, कोई जिंदा हो

(iii) अचित्त - यदि सभी मृत हो।

(गा.48-52) ★ बे-ते-चउ इंद्रिय का उपयोजन -

बेइंद्रिय का प्रयोजन < (i) शरीर से (ii) शब्द से

(i) शब्द से - शंख के शब्द सुनकर शुभ शकुन मानना आदि

(ii) शरीर से - ⓐ संपूर्ण शरीर - अक्ष, शंख, शुक्ति का उपयोग

ⓑ एकदेश ⓒ उनसे उत्पन्न कोई वस्तु।

तेइंद्रिय - उदई के राफडे की मिट्टी का रोग में उपयोग
चउ - भेड़ की पुरीष का वमन में उपयोग
(गा-50) ★ पंचेंद्रिय - नारक - अनुपयोगी
तिर्यंच - चर्म, हड्डी, दांत, नख, रोम, शृंग, गोबर, गोमूत्र, दूध, दही आदि
(गा-51) मनुष्य - उपदेश, शिक्षा, रास्ता पूछने में आदि
(गा-52) देवता - तप में, मृत्यु का समय जानना हो तो, शुभ-अशुभ पृच्छा
[गा-53-54] ★ सभी का एक-एक का उपयोग कहा, द्वयादि भिन्न के संयोग कहते हुए सभी के संयोग की संख्या कही, फिर सबका भिन्न उपयोग कहा
(गा-55) ★ क्षेत्र - काय पिंड - तीन प्रदेश या तीन समय का पिंड। ऐसे ही द्रव्य तो तो एक द्विप्रदेशिको (क्षेत्र) आदि (काल)।
फिर शंका - क्षेत्र तो नित्य है, अकृत्रिम है। ऐसे ही काल तो एक समय ही सत् है तो इनके पिंड कैसे कहा इ.
(गा-56) उ. क्षेत्र में प्रदेशों की द्वयादि संख्या बदलती है इसलिए पिंड कहने में कोई दोष नहीं। काल भी अपेक्षा से सत् और द्रव्य है इसलिए जड़िणाजी भी है तो पिंड कहने में दोष नहीं।
(गा-57-58) ★ क्षेत्र और काल पिंड की चर्चा
(गा-59-63) ★ भाव पिंड - 2 प्रकार < प्रशस्त - दस प्रकार / अप्रशस्त - 10 प्रकार
प्रशस्त - एकविध - संयम, द्विविध - ज्ञानक्रिया, त्रिविध - ज्ञानादि 3 ... यावत् 10
अप्रशस्त - एकविध - असंयम ... यावत् 10
सप्तविध - पिंडैषणा, पानैषणा, अवग्रहप्रतिमा।
पिंडैषणा - ① असंसृष्ट हाथ या भाजन से ② संसृष्ट हाथ या भाजन से ③ खुद की थाली से ④ अल्प लेप वाला और अल्पशब्द वाला ले ⑤ अवगृहीता - खाते समय जो चम
उद्धृता नित्य

से खा रहा है ⑥ अभिसाधुगृहीता - परोसने के लिए जो खाने वाले को दिया जा रहा है ⑦ उज्झितधर्मा - जो भोजन छोड़ दिया गया है वह। ★ एषणा भी same.

(गा.64) ★ प्रशस्त-अप्रशस्त के लक्षण - जिससे कर्म बंध हो अप्रशस्त
कर्म निर्जरा हो प्रशस्त।

(गा.65-66) ★ भाव पिंड की चर्चा।

(गा.67) ★ यहाँ द्रव्य पिंड में अचित्त और भाव पिंड में प्रशस्त पिंड से का प्रयोजन है।
प्र. कर्म क्षय के लिए तो प्रशस्त भाव पिंड का प्रयोजन है तो द्रव्य पिंड की क्या
उसे आवश्यकता है। उ. भावपिण्डोपचयस्य तदुपष्टम्भकत्वाद् = भाव पिंड
को पुष्टि द्रव्य के सहारे से होती है।

(गा.68) ★ अचित्त द्रव्य पिंड - उपकरण - आहार, उपाधि, शय्या। यहाँ ग्रंथ में प्रस्तुत आहार
का अधिकार है।

(गा.69-71) ★ आहार पिंड के विशेष प्रयोजन को कारण - की चर्चा।

(गा.72) ★ प्रस्तावना। एषणा की

(गा.73) ★ एषणा के एकार्थी शब्द

(गा.74) ★ एषणा को निक्षेप से समझाया

(गा.75&76) द्रव्यैषणा
भावैषणा

(गा.77) ★

(गा.78) ★ गवेषणा, ग्रहणैषणा, ग्रासैषणा, इनका क्रम ऐसा क्यों है? उ. क्योंकि
सबसे पहले गवेषणा होती है। गवेषित आहार का ही ग्रहण होता है।
फिर ग्रहण किए हुए आहार को ही वापरते हैं।

(गा.79) ★ गवेषणा को द्रव्यादि निक्षेप से समझाना। द्रव्य गवेषणा को समझने के

दो दृष्टांत – कुरंग और हस्ति।

(गा. 80-84) ★ कुरंग दृष्टांत :- क्षितिप्रतिष्ठित नगर × जितशत्रु राजा × सुदर्शना रानी × गर्भिणी × दोहद-कनकपृष्ठ मृग का मांस खाना × शरीर दुर्बल × राजा पूछा × दोहद अकथयत् × पुरुषाः प्रेषिताः × ते अचिन्तयन् × श्रीफलानि कनकपृष्ठ मृगाणां इष्टानि × सम्प्रति न विद्यन्ते फलानि × पुंजकाः कृताः ते मोक्काणं × तं दृष्ट्वा यूथपतिः अवदत् – केनचित् धूर्तेन इदं कूटं कृतं × यदि सत्यं मन्येथाः तत् भयुक्तं यतो पुरापि बाता बानि स्म किन्तु ~~श्रीफलानि~~ श्रीफलपुञ्जकाः न दृष्टाः × ये जीवन्यन्त ते दीर्घजीविनः स्युः, ये च न जीवन्यन्त ते मृताः।

(गा 82) दार्ष्टान्तिकं – हरन्तः सन्निवेश × समिताचार्यः कदाचित् समाययुः × जिनदत्त श्रावकः अधाकर्मगोचरीं कृतवान् × आचार्येण शिष्याः तत्र प्रेषिताः निवारिताः × ये न प्रजीवन्यन्त ते दीर्घसंसारिणः जाताः, ये च प्रजीवन्यन्त ते लघुसंसारिणः जाताः।

इति द्रव्यगवेषणायाः दृष्टान्तः।

(गा. 83-85) ★ ~~तत~~ तद्वत् एव हस्तिदृष्टांतः दार्ष्टान्तिकं च।

(गा. 85) ★ उद्गमस्य एकार्थिकानि द्रव्यादिनिक्षेपैः भेदाश्च।

(गा. 86) ★ द्रव्योद्गमः तद्वत् पियराजकुमारस्य दृष्टान्तेन ज्ञातव्यो। भावोद्गमः त्रेधा- ⓐ दर्शनविषयकः, ⓑ ज्ञान- ⓒ चारित्रविषयकौ च।

(गा 87) ★ द्रव्योद्गमस्तु ज्योतिषां तृणानां औषधीनां मेघानां करणां च ख्यातः।

(गा 88-90) ★ तद्वत् पियराजकुमारस्य दृष्टान्तः दार्ष्टान्तिकं च। अत्र ग्रन्थे चारित्रोद्गमेन (TRW) अधिकारः। चारित्रस्य शुद्धेः कारणं द्विधा, तथाहि- आन्तरं बाह्यं च।

(गा 91) ★ आन्तरं तथाहि- सम्यग्दर्शनज्ञानाभ्यां। बाह्यं ~~उद्गम~~ उद्गमशुद्धेः चारित्र शुद्धेः न केवलयोः ज्ञानदर्शनियोरेव शुद्धौ चारित्रशुद्धेः यतः सम्यग्दर्शन-ज्ञानवतापि उद्गमदोषपरिशुद्धमाहारः ग्राह्यः।

(जी. 92-93)★ 16 उद्गम दोष कहते हैं -

1. आधाकर्म - आधा = प्रणिधान। साधु निमित्त को मन में प्रणिधानकर पाकादि क्रिया वह आधाकर्म। उस क्रिया के योग से वह भक्तादि भी आधाकर्म।

2. औद्देशिक - जितने भी आर्थिक आयेंगे सबको देंगे इस उद्देश से बनी भिक्षा।

3. पूतिकर्म - शुद्ध आहार में अशुद्ध आहार मिलाना।

4. मिश्रजात - कुटुंब-साधु आदि सभी का प्रणिधान कर बना गया आहार।

5. स्थापना - साधु को देने के लिए कुछ देर तक रखकर रखना।

6. प्राभृतिका - प्राभृत = भेटणुं। साधु के आगमन के कारण विवाहादि प्रसंग जल्दी या लेट करना।

7. प्रादुष्करण - साधु को देने के लिए भक्तादि प्रगट करना, मणि आदि की स्थापना से अथवा खिड़की आदि खोलने से।

8. क्रीत - साधु के लिए पैसे से खरीदना।

9. अपमित्य - उधार लेना। 'तुमे वापस दूंगा' ऐसा कहकर लेना।

10. परिवर्तित - साधु के लिए अदला-बदली करना।

11. अभिहृत - साधु के लिए अन्य जगह से लाना।

12. उद्भिन्न - साधु के लिए मिट्टी वगैरे का ढक्कन खोलकर या नया Packet खोलना।

13. मालापहृत - जहाँ से आहार लेने में तकलीफ हो ऐसी जगह से आहार लेना जैसे - ऊपर माले पर से उतारी।

(iii) आत्मघ्न= ~~आत्मघ्न आत्मघ~~ जो स्वयं की आत्मा का घात करे।
(iv) आत्मकर्म= पाचकादि के कर्म को स्वयं का करना।

14. आच्छेद्य- स्वयं के या सेवक के पुत्रादि से छीनकर लेना।
15. अनिसृष्ट- सभी स्वामियों द्वारा अननुज्ञात आहार।
16. सद्यवपूरक- साधु के आगमन को जानकर पकते हुए अन्न में और पूर देना।

(गा. 94) ★ द्वार गाथा- आधाकर्म दोष की द्वार गाथा (I) एकार्थक शब्द (II) किसके लिए किया हुआ आधाकर्म होता है' इति विचार्य (III) आधाकर्म का स्वरूप (IV) स्वपक्ष और परपक्षकृत की को कहना (V) प्रतिक्रमादि 4 प्रकार (VI) आधाकर्म ग्रहण के दोष।

(गा. 95) ★ (I) एकार्थक शब्द - आधाकर्म = शब्दार्थ पहले कह दिया है।
(ii) अधःकर्म= अधोगति के कारण रूप कर्म।
↑ ये दो नाम मुख्य है। प्रतिसेवनादि द्वारा भी आधाकर्म होता है, उन्हें अभेदविवक्षा से चार तरीके प्रतिपादन करते हैं- प्रतिसेवन, आधाकर्म की निमंत्रणा के बाद जो सुना जाता है वह प्रतिश्रवण, आधाकर्म भोजी के साथ रहना वह संवास, आधाकर्म भोजी की प्रशंसा वह अनुमोदना।
★ आधा = आधार ~~दुष्कर्म~~ नामादि चार निक्षेप से कहना।
★ (गा. 96) द्रव्य आधा कहते हैं- मनुष्य की पर्यंका, यूप, काय, पक्षी का आधार मशक, मशक का शिक्यकंधा etc.
★ भाव आधा- मन का प्रणिधान, गोचरी विषयक प्रणिधान वह भाव आधा।
★ (गा. 97) एकेन्द्रिय से पंचेंद्रिय तक के जीवों को अतिपात (मारना) संबंध जो भी क्रिया वह उपद्रावण। (आ. 16-18) eg. शालि का 1 बार कण्डन करने पर वे अचित्त होते हैं, तो 1 बार कंडन वह उपद्रावण और 3 बार कंडन वह अतिपात।

PAGE :
DATE : / /

त्रिपातन = काय वाक् मन से अथवा देह-आयु-इंद्रिय से जीव का संपूर्ण विनाश

★ यदि साधु के लिए अपद्रावणा करे और स्वयं गृहस्थ के लिए अतिपात हो तो वह कल्प्य अन्न है। यदि साधु के लिए त्रिपातन हो तो वह अकल्प्य।

★ साधु का निमित्त मन में धारण कर जो अपद्रावणा या त्रिपातन कर बनाया गया अन्न वह आधाकर्म।

(गा. 98) ★ अध: कर्म - पर्यायवाची।

★ द्रव्य अध: कर्म कहते हैं - जो कोई भी द्रव्य पत्थर वगैरह पानी-द्रव्यादि में डालने पर नीचे जाए, रस्सी या निसरणी से पुरुषादि का कुए में नीचे उतरना। etc.

(गा. 99) ★ भाव अध: कर्म - संयमस्थानों में, कण्डकों में, लेश्या में, शुभ कर्म प्रकृति की स्थितियों में अधाकर्म वापरता साधु नीचे जाता है।

(भा. 19-21) ★ षट्स्थान समझाते हैं - देश विरति के उत्कृष्ट विशुद्धि स्थान के निर्विभाग भाग, X (संख्या) से सर्व जीत का अनन्तवा भाग = सर्व विरति के जघन्य विशुद्धि स्थान के निर्विभाग भाग की संख्या।

→ ऐसे निर्विभाग भाग को चारित्र पर्याय भी कहते हैं।

→ अनंत चारित्र पर्याय = 1 संयम स्थान।

→ 2nd संयम स्थान = 1st संयम स्थान के + X का अनंत भाग

→ इसी तरह तीसरा, चौथा, इस प्रकार आदि संयम स्थान जानना, पूर्व-पूर्व से अनंत भाग अधिक। (चारित्र पर्याय (X))

→ एक अंगुल क्षेत्र में रहे आकाश प्रदेश (असंख्य) जितने ये संयम स्थान = 1 कण्डक।

→ I कंडक + उसे y की असंख्यातवा (y) = II कंडक

→ इसके बाद फिर से एक कण्डक (भाग) जितने संयम स्थान अनंत भाग वृद्धि वाले

→ फिर एक असंख्य भाग वृद्धि वाला संयमस्थान।

→ इस प्रकार परस्पर अनंतभाग की अधिकता वाले संयमस्थानों से व्यवहित असंख्य भाग की अधिकता वाले संयम स्थान, कंडक जितने करना।

अर्थात् असंख्यभाग अधिक वाले संयम स्थान जब असंख्य हो, तब उन्हें मिलाकर । कंडक कहा जाएगा।

→ फिर से अनंतभाग वृद्धि वाले संयम स्थान के कंडक, असंख्य करना,

→ फिर बीच-बीच में एक असंख्यभाग वृद्धि वाला संयम स्थान उत्पन्न

→ ऐसे असंख्य भाग वृद्धि वाले कंडक असंख्य हो तब एक संख्यात भाग वृद्धि वाला संयम स्थान आएगा।

→ ऐसे संख्यात भाग वृद्धि वाले संयम स्थानों का कंडक पूर्ण हो, तब एक संख्यात गुण वृद्धि वाला संयम स्थान।

→ संख्यात गुणवृद्धि वाले संयम स्थानों का कंडक पूर्ण हो तब एक असंख्यात गुण वृद्धि वाला संयम स्थान।

→ ऐसे " " का कंडक पूर्ण हो तब एक अनंत गुण वृद्धि वाला संयम स्थान।

→ ऐसे " " का कंडक पूर्ण हो तब षट्स्थान खत्म होगा।

→ अनंतभाग वृद्धि = सर्व जीव का अनंतवा भाग की संख्या से भाग करना

असंख्य भाग = लोकाकाश के आकाश प्रदेश की संख्या से भाग करना।

(गा.102) ★ ऐसे कर्म के प्रभाव से वह नरक में जाता है।

PAGE :
DATE : / /

असंख्यात भाग = उत्कृष्ट संख्या से भाग करना।

→ इस प्रकार असंख्य लोकाकाश प्रदेश प्रमाण षट्स्थान = संयम श्रेणि।

★ → इस प्रकार आधाकर्म को वापरता हुआ साधु संयमश्रेणि, लेश्या, विशुद्ध प्रकृति कर्म की को नीचे-नीचे गिराता है।

(गा. 100) ★ आधाकर्म ग्राही साधु यदि संयमस्थान को नीचे गिराता है तो क्या दोष है आधाकर्म के ग्रहण से विशुद्ध संयम स्थान रूप शुभ अध्यवसायों को नीचे-नीचे गिराकर चरणाग्र से कुछ न्यून साधु यानि 11वें गुणस्थान वाला साधु भी नरकादि दुर्गति में जाता है।

→ चरणाग्र = प्रधान है चरण (चारित्र) जिसमें = 12वें गुणस्थान वाला।

(गा. 101) ★ इसी बात को विभावन करते हैं - आधाकर्म ग्राही विशुद्ध संयमस्थानों से गिरकर नरकादि अधोगति का आयुष्य बांधता है, अन्य कर्मों को भी अधोगति प्रायोग्य करता है। आधाकर्म में तल्लीनता की वृद्धि से उन कर्मों को घन करता है, निकाचित करता है। उन कर्मपुद्गलों का चय और उपचय करता है। चय = थोड़ी वृद्धि, उपचय = बहुत वृद्धि।

↑ 'अधः कर्म' पूर्ण हुआ।

↳ अब 'आत्मघ्न' का विवेचन करते हैं -

(गा. 103) (गा. 104) ★ निदा = निदान पूर्वक, जान बूझकर, अनिदा = अजानते हुए

★ जो गृहस्थ प्रयोजन से (खुद के या पर के लिए) अथवा प्रयोजन बिना ही (पाप करने के स्वभाव से), निदा से या अनिदा से प्राण व्यपरोपण करे। (गा 104 से संबंध)

~~(गा. 104)~~ ★ निदा/अनिदा का अन्य ~~अन्वय~~ अर्थ = जीव को मारने के पहले खबर हो कि मैं अभी तुझे मारूंगा, वह निदा। इससे उल्टा अनिदा।

(गा. 104) ★ पृथ्वी आदि जीवों को यानि द्रव्यरूप आत्माओं का व्यपरोपण, हिंसा वह द्रव्यात्मघन।

★ भाव आत्मघन - भाव आत्मा यानि ज्ञान-दर्शन-चारित्र, उन्हें मारना, नाश करना वह भावात्मघन। कोई भी जीव हिंसा करते समय परमार्थ से स्वयं के (आत्मा रूप) चारित्र की हिंसा करता है और चारित्र का नाश होने पर ज्ञान-दर्शन तो निश्चय नय से नष्ट ही है।

(गा.105) → निश्चय नय: चारित्र नष्ट → ज्ञान-दर्शन नष्ट क्योंकि ज्ञान-दर्शन का फल चारित्र है और कार्य न होने पर कारण भी असत् है, स्वकार्यकरणात्। जो चारित्र लेकर आहार लांपट्य से निवृत्त नहीं होता वह भगवदाज्ञा का लोप करने से सम्यग्ज्ञानी और दर्शनी नहीं है।

व्यवहार नय: चारित्र नष्ट → एकांत से ज्ञान-दर्शन नष्ट नहीं क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव की अपेक्षा से हो भी कह सकते हैं।

आत्मघन पूर्ण हुआ।

(गा. 106) ★ द्रव्यात्मकर्म कहते हैं - कोई पुरुष पैसे आदि में 'यह मेरा है' ऐसी कल्पना करे, वह द्रव्य आत्म कर्म।

★ भावात्मकर्म - ~~साधुकर्म~~ भोजन को पकाने वाले नहीं जो कर्म बांधे, वे कर्म स्वयं के आधाकर्म ग्रहणरूप अशुभ भाव से आत्मा में बांधना यह भावात्मकर्म।

(गा. 107, 108) ★ इसी अर्थ का विभावन करते हैं - एषणीय, कल्प्य आहार भी आधाकर्म ग्रहण के अशुभ परिणाम पूर्वक यदि साधु खोरे तो उसे यह भावात्मकर्म लगता है।

PAGE :
DATE : / /

★ पर पक्ष- आपने ऐसा कहा कि परकर्म आत्म संबंधी करता, वह आत्मकर्म तो परकर्म क्रिया सन्य में कैसे संक्रमित होगी?

(गा.104 से 110) अन्य कुछ लोग कूट दृष्टांत से समझाते हैं कि जैसे व्याध द्वारा स्थापित कूट में मृग का ही बंध होता है, व्याध का नहीं ऐसे ही आधाकर्म ग्रहण करने वाले साधु को ही कर्मबंध होता है, पाककर्ता को नहीं तो परकर्म आत्म संबंधी करता है' ऐसा कैसे कह सकते हैं?

उत्तर- पर पाचक को भी कर्मबंध होता है क्योंकि वह पाचन क्रियारूप आरंभ का साक्षात् कर्ता है। मृग भी कूट से ही नहीं बंधता है, वह अप्रमत्त और अदक्ष होता है तभी कूट में फँसता है। जो मृग अप्रमत्त और दक्ष है, वह कभी कूट से नहीं बंधता। इस प्रकार साधु भी जब अप्रमत्त और दक्ष होता है तब वह आधाकर्म में लेपकर नहीं होता।

इस प्रकार साधु को कर्मबंध स्वयं के आधाकर्म में लंपटता रूप अशुभ परिणाम से कर्मबंध करता है, पर पाचकादि के कारण नहीं।

'परकर्म आत्म कर्म करता है' इसका भावार्थ है कि जितना कर्मबंध पर पाचक को होता है, उतना बंध इस साधु को होता है।

(गा.111) ★ परपक्ष- जो आधा कर्म करता है, करवाता है या अनुमोदता है, उसे दोष है किंतु जो साधु ये तीनों नहीं करता तो उसे ग्रहण करने में क्या दोष?

उत्तर- यद्यपि स्वयं आधाकर्म नहीं करता है किंतु 'ये मेरे लिए बना है' इस ऐसा जानता हुआ भी यदि ग्रहण करता है तो वह आधाकर्म के ग्रहण को बढ़ावा देता है। अन्य साधु और दाता को ऐसी बुद्धि होती है कि आधाकर्म में कोई दोष नहीं है। इस प्रकार दीर्घ काल तक षट्काय की विराधना का प्रवर्तन करता है। इस अतिप्रसंग दोष

से आधाकर्म नहीं लेना।

(ii) आधाकर्म भोजन में अवश्य अनुमोदना होगी, 'अप्रतिषिद्धं अनुमतं' न्याय से।

'आत्म कर्म' नाम धरा हुआ।

(गा.112) ★ जीव प्रतिसेवनादि दोषों द्वारा परकर्म को आत्मकर्म करता है।

प्रतिसेवणादि में पूर्व-पूर्व का दोष गुरु और पश्चात्-पश्चात् का लघु है।

यानि प्रतिसेवण - प्रतिश्रवण - संवास - अनुमोदना।
← दोष गुरु

(गा.113) ★ प्रतिसेवन = जो साधु स्वयं आधाकर्म आहार लेकर वापरता है, वह दोष। → दोष लघु
(अथवा अन्य द्वारा)

(गा.114-115) ★ ~~प्रतिश्रवण~~ प्रश्न - स्वयं लेकर आधाकर्म वापरे तो दोष किंतु अन्य द्वारा मंगाए तो वापरने वाले को कोई दोष नहीं, जैसे स्वयं के हाथ से अंगारे पकड़ने पर जलते हैं किंतु दूसरे के हाथ से अंगारे पकड़ने पर स्वयं नहीं जलते?

उत्तर - यह गलत तर्क है। उसे भी प्रतिसेवन दोष ही लगता है क्योंकि 'जिसके लिए आरंभ होता है, उसे नियम से प्राणिवध का लगने से व्रतभंग होता है।

(गा.116) ★ प्रतिश्रवण = कोई आधाकर्म गोचरी लाए और गुरु को दिखाए। गुरु कहे कि 'तेरे द्वारा यह अच्छी गोचरी प्राप्त की गई' यह प्रतिश्रवण दोष।

(गा.117) ★ संवास = आधाकर्मभोजी के साथ रहना।

अनुमोदना = 'वे साधु धन्य हैं, जो रोज ऐसी गोचरी वापरते हैं' इस प्रकार।

(गा.118) ★ इनके दृष्टांत कहते हैं - प्रतिसेवण में स्तेन चोर, प्रतिश्रवण में राजपुत्र, संवास में पत्नी वासी वणिक, अनुमोदना में राजदुष्ट की प्रशंसा करने वाले का उदाहरण है।

(गा.119) ★ प्रतिसेवन में चोर का दृष्टांत - कोई गाँव से चोर गाएँ चुराकर स्वयं के गाँव की ओर चले। रास्ते में इन्हें अन्य चोर मिले, वे भी उनके साथ हो गए।

स्वयं के गाँव पहुँच कर उन्होंने गाय को मारकर मांस पकाना प्रारंभ किया। इस समय अन्य पथिक भी वहाँ आ गए। वे पथिक भी भोजन के लिए निमंत्रित किए गए। गोमांस पकने पर खाना चालू किया। 'गोमांस खाना पाप है' इस प्रकार सोचकर कुछ त्यागे (खाया नहीं) परोसने लगे। इसीसमय खुल्ली तलवार वाले कूजक वहाँ आए, उन्होंने सबको पकड़ लिया। जो पथिक रास्ते में मिले, वे बोले कि हम तो पथिक हैं। किंतु गोमांस भक्षण में उद्यत होने से पकड़े गए। उन सबको कूजकों ने मारा।

(गा.120) ★ दार्ष्टान्तिक ⇒ जो साधु आधाकर्म सेवन करते नहीं हैं किंतु परोसते हैं, वे भी कर्म से बंधते हैं। यहाँ

~~चोर की जगह~~ आधाकर्म खाने वाले, गोमांस भक्षक → ~~आधाकर्म~~ भोजी
परोसने वाले → आधाकर्म परोसने वाले, गोमांस → आधाकर्म, पथ → मनुष्य जन्म
कूजक → कर्म, मरण → नरकादि दुर्गति में पड़ना

(गा.121) ★ प्रतिश्रवण में राजपुत्र का दृष्टांत — गुणसमृद्ध नगर × महाबल राजा × शीला रानी × विजित समर राजपुत्र × राजपुत्र ने सोचा, ये राजा बूढ़ा होने पर भी प्रसन्न नहीं है, इसलिए इसे प्रसन्न करना चाहिए × निजजनों के साथ मंत्रणा करता है × कुछ बोले - हम सहायक हैं × कुछ बोले - इस प्रकार कर × कुछ मौन रहे × कुछ ने राजा को कह दिया। राजा ने मौन रहने वाले तक सबको मारा, कहने वाले को पूजा।

कुछ बोले - हम सहायक हैं, कुछ बोले - छूकर, कुछ मौन रहे - ये तीनों प्रतिश्रवण दोष वाले हैं।

(गा.122) ★ दार्ष्टान्तिक - कोई साधु ने ५ साधुओं को आधाकर्म के लिए निमंत्रण दिया। पहले - स्वीकारा दूसरे - मैं नहीं खाऊँगा, तुम खा लो। तीसरे - मौन। चौथा - साधु को आधाकर्म नहीं कल्पता है इसलिए मैं नहीं खाऊँगा। प्रथम तीन को प्रतिश्रवण दोष। प्रथम को प्रतिषेवण भी है।

(गा.123) ★ जो आधाकर्म त्यागा और जिसने वापरा, दोनों को मन-वचन-काया दोष वाले। दूसरे दूसरे का वचन-मन दोष वाले। तीसरे को प्रन दोष वाला। (चौथा) तीनों दोष से शुद्ध।

(गा.124) ★ राजपुत्र को प्रतिषेवण-प्रतिश्रवण-संवास-अनुमोदना रूप चारों दोष होते हैं। ऐसे ही आधाकर्म भोजन करने वाले को चारों दोष – भोजन करने से प्रतिषेवण, गृहस्थ द्वारा कृत निमंत्रण स्वीकारने से प्रतिश्रवण, जिसे आधाकर्म लाकर देता है उसके साथ रहने से संवास, उसमें बहुमान से अनुमोदना।

इस प्रकार प्रतिषेवण में चारों, प्रतिश्रवण में 3, संवास में 2, अनुमोदना में 1 दोष।

(गा.125) ★ संवास में पत्नी दृष्टांत – वसन्तपुर नगर × अरिमर्दन राजा × विपदर्शना रानी × भीमा पत्नी × उसमें चोरों के साथ वणिक् भी रहते हैं × चोर अरिमर्दन के राज्य में चोरी करते, एकबार राजा स्वयं पकड़ने निकला × कितने कुछ लोग मर गए, कितने भाग गए × कुछ पकड़े गए × वणिक् ने सोचा – हम चोर नहीं हैं, इसलिए नहीं भागे × राजा ने पकड़, वे बोले – हम चोर नहीं × राजा बोला – तुम संवास के कारण चोर से भी ज्यादा अपराधी हो। राजा द्वारा मारे गए।

(गा.126) ★ दार्ष्टान्तिक – जैसे वणिक् को संवास दोष के लिए हुआ, वैसे साधु को आधाकर्मभोजी का संवास दोष के लिए होता है, भले ही वो साधु आधाकर्म त्यागी हो, सुरूक्षवृत्ति वाला हो (विगई त्यागी), निःस्नेह वृत्ति वाला हो (राग आसक्ति रहित हो)। ऐसा साधु आधाकर्म के दर्शन, गंध और कथा से दूषित होता है।

दर्शन – मनोज्ञ आहार देखने इच्छा हो सकती है।

गंध – " " की सुगंध से " "

कथा – " " की कथा " "।

(गा. 127) ★ अनुमोदना में राजदुष्ट दृष्टांत - श्रीनिलय नगर × गुणचंद्र राजा × सुरूप वणिक् × वसुदारा नंदपत्नी × वसुदा राजा के अंतःपुर के पास से निकली × परस्पर अनुराग हुआ × दूती से संवाद हुआ × प्रतिदिन रानी के साथ भोग करने लगा × राजा को खबर मिली × राजा ने उसे और सभी रानियों को मारा तो भी गुस्सा नहीं उतरा × नगर में गुप्तचर भेजे × जो लोग उसकी प्रशंसा करते, उन्हें मारता × जो निंदा करते, उन्हें छोड़ता।

दार्ष्टांतिक - अंतःपुर → आधाकर्म, वणिक् → आधाकर्म भोजी, राजा → कर्म, मृत्यु → संसार, आधाकर्मभोजी के प्रशंसक कर्म बांधते हैं।

(गा. 128) ★ अनुमोदना के प्रकार बताते हैं - ये साधु हमेशा (i) मनोज्ञ आहार प्राप्त करते हैं - (ii) परिपूर्ण पाते हैं (iii) आदर पूर्वक (iv) भोजन वेला में (v) हेतु अनुकूल (vi) स्निग्ध आहार प्राप्त करते हैं। इस प्रकार नहीं बोलने पर भी दोष।

मजाक या अनाभोग से भी अनुमोदना में दोष।

→ ★ आधाकर्म के पर्यायवाची नाम पूर्ण हुए, अब 'एकार्थक' अवयव की व्याख्या करते हैं -

(गा. 129) ★ प्रश्न - ये सब नाम व्युत्पत्ति निमित्त वाले हैं या नहीं? इनमें अलगपन है या नहीं?

उत्तर - ये सब नाम ... वाले हैं, इनमें प्रवृत्ति निमित्त भी भिन्न है।

(गा. 130) ★ नामविषयक चतुर्भंगी कहते हैं - 4 प्रकार के नाम -

1. एकार्थक, एकव्यंजन 2. एकार्थक, नानाव्यंजन 3. अनेकार्थक एकव्यंजन नानार्थक,
4. नानार्थक, नानाव्यंजन।

(गा. 131-134) ★ इनके लौकिक दृष्टांत - 1. क्षीर = गाय का दूध, अन्य जगह भी यही नाम, यही अर्थ, उससे अन्य जगह भी यही नाम, इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है, यह एकार्थक एकव्यंजन (देशभेद से)

2. दुग्ध, पयः, पीलु आदि एकार्थक, नानाव्यंजन।

3. गाय का दुग्ध-क्षीर, भैंस का दुग्ध-क्षीर, बकरी का दुग्ध-क्षीर। ये नानार्थक, एक व्यंजन
4. घट, पट, शकट - नानार्थक, नानाव्यंजन।

(गा. 133-134) ★ इस चतुर्भंगी को आधाकर्म में जोड़ते हैं - 1. आधाकर्म को एक ही वस्तु के अर्थ में बहुत पुरुष एकसाथ (अलग-अलग जगह पर) बोलें। (देशभेद)
2. आधाकर्म, अधःकर्म आदि।
3. अशन, पान, खादिम, स्वादिम रूप 4 अर्थ में आधाकर्म शब्द का प्रयोग।
4. आधाकर्म में एक ही अर्थ होने से यह भांग संभव नहीं है। किंतु विवक्षा से कर (व्यंजन) सकते हैं - (i) अशन आधाकर्म (ii) पान अधःकर्म (iii) खादिम आत्मघ्न (iv) स्वादिम आत्मघ्न ये चारों नाम।

(गा. 135) ★ दूसरे भांगे की विभावना करते हैं - जैसे इंद्र, शक्र, पुरंदर आदि शब्द समान अर्थवाचे हैं, वैसे ही आधाकर्म, अधःकर्म आदि शब्द भी समान अर्थवाचे हैं।

(गा. 136) ★ इसी को सिद्ध करते हैं - संयम स्थान में नीचे गिराने से आधाकर्म ही अधःकर्म कहलाता है। षड्जीव की विराधना से स्वयं के चारित्ररूप आत्मा की विराधना होने से आधाकर्म ही आत्मघ्न कहलाता है। आधाकर्म ग्राही को पर पात्रकस्थित ना ही कर्मबंध होने से आत्म कर्म कहलाता है।

(1) → इस प्रकार एकार्थक, ऐसा अवयव व्याख्यात हुआ।

(गा. 137) ★ (11) द्वार, किसके लिए किया हुआ कर्म, आधाकर्म, यह अवयव की व्याख्या करते हैं -
साधार्मिक के लिए किया हुआ आहार आधाकर्म होता है।

(गा. 138) ★ साधर्मिक - 12 प्रकार से 1 नाम 2 स्थापना 3 द्रव्य 4 क्षेत्र 5 काल 6 प्रवचन 7 लिंग 8 दर्शन 9 ज्ञान 10 चारित्र 11 संग्रह 12 भावना से साधार्मिक।

(गा.139-141) * 1. नाम - समान नाम ex. देवदत्त नामक साधु के देवदत्त नामवाले व्यक्ति साधर्मि

2. स्थापना - स्थापना से साधर्मिक ex. दो प्रकार (i) सद्भाव - स्वयं के गुरु या पुत्र की प्रतिमा या चित्र में स्थापना, वह प्रतिमा या चित्र पुत्र या गुरु का साधर्मिक
(ii) असद्भाव - अन्य वस्तु में स्थापना

3. द्रव्य - जो साधर्मिक बनने के योग्य है वह, या जो भूत में साधर्मिक था भविष्य में वह

4. क्षेत्र - समान क्षेत्र वाला

5. काल - समान काल वाला

6. प्रवचन - साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप संघ में से कोई एक। नीचे कि और प्रत्येक कुछ संघ में नहीं आते।

7. लिंग - समान वेश वाला

8. दर्शन - ३ प्रकार (क्षायिक, क्षायोपशमिक, औपशमिक) समान दर्शन वाला

9. ज्ञान - ५ प्रकार, समान ज्ञान वाला (मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव, केवल)

10. चारित्र - ५ प्रकार (सामायिक, छेदोपस्थाप्य, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसंपराय, यथाख्यात) समान चारित्र वाला

11. अभिग्रह - ५ प्रकार (द्रव्यादि) समान अभिग्रह वाला

12. भावना - ५ प्रकार (अनित्यादि) समान भावना वाला

(गा.142-143) * नाम साधर्मिक आश्रित्य कल्प्याकल्प्यविधि।

(गा.144) * स्थापना " " "

(गा.145) * क्षेत्र-काल " " "

(गा.146-159) * प्रवचनादि ५ पदों में द्विसंयोग के भांगे बनाना। कुल २ भांगे ex. प्रवचन और लिंग साधर्मिक। इनमें इस भांगे की चतुर्भंगी करना, ex. फिर उनके उदाहरण कहना और कल्प्याकल्प्यविधि कहना। ex.

(i) प्रवचन साधर्मिक, लिंग से नहीं | (ii) लिंग सा. प्रवचन से नहीं (iii) दोनों से साधर्मिक | (iv) दोनों से नहीं | ये प्रथम चतुर्भंगी | इनके उदाहरण — (i) अविरत सम्यग्दृष्टि से 10वीं श्रावक प्रतिमा तक के श्रावक | (ii) निह्नव (iii) साधु और 11वीं प्रतिमा वाले श्रावक (iv) तीर्थंकर, प्रत्येक बुद्ध | ये उदाहरण हुए | इसमें साधु के लिए बना हुआ अकल्प्य बाकी सबके लिए बना हुआ कल्प्य |

इस प्रकार सभी 21 भांगों में चतुर्भंगी बनाकर उदाहरण और कल्प्याकल्प्य विधि कही |

★ सार — तीर्थंकर प्रत्येक बुद्ध, साधु के लिए बना हुआ कल्पता है, जबकि साधु के लिए किया गया नहीं कल्पता |

→ तीर्थंकर के लिए देवकृत समवसरण भी साधु को कल्पता है |

(प्र.160) ★ आधाकर्म क्या होता है | (उ. अशन पान खादिम स्वादिम

(प्र.161) ★ अशन — शाल्यादि, पान — वापीकूपतडागादि का पानी, खादिम — फलादि, स्वादिम — सूंठ, हल्दी आदि |

★ इन प्रत्येक की चतुर्भंगी का स्वरूप —

ⓐ कृत = क्रिया का प्रारंभ ⓑ निष्ठित = क्रिया की समाप्ति |

चतुर्भंगी इस प्रकार — (i) साधु के लिए कृत, साधु के लिए निष्ठित (ii) साधुकृत, अन्य निष्ठित (iii) अन्य कृत, साधु निष्ठित (iv) अन्य कृत अन्य निष्ठित

~~इनकी व्याख्या — (i) साधु के लिए कुछ बनाना प्रारंभ करना~~

★ इनमें (ii) और (iv) भांग शुद्ध हैं, साधु के आसेवन योग्य हैं | कृत और निष्ठित में निष्ठित की प्रधानता है इसलिए (ii) भंग भी शुद्ध |

★ थक्के थक्कावडियं = अवसरे ऽवसरानुरूपं आयतत्ति ~~इह~~ तत् थक्के थक्कावडिय इत्युच्यते।
~~इह~~ अत्र अयं दृष्टान्तः- यशोधरा आभीरी, तस्या योगराजो भर्ता, वत्सराज देवरः, तस्य भार्या योधनी।
एकदा योधनीयोगराजौ सप्रकाशं मृतौ। ततो यशोधरा देवरं अयाचत - अहं तव भार्या भवामि। देवरोऽ
~~अ~~ प्रतिपन्नवान्। ततो साऽचिन्तयत् - अहो अवसरे ऽवसरानुरूपं अस्माकं अजायत।

ॐ ऐं(ह्रीं) अर्हद्भ्यो नमः।

(गा.162-167) ★ आधाकर्म
अशन की संभावना कैसे? दृष्टांत से समझाते हैं - संकुच्य ~~x~~ क्षत्रप x जिनदत्तश्रा x जिनमति श्रावका x सर्वे सर्वे कोद्रवा अशनन्ति x एकदा साधवः तत्र क्षेत्रप्रत्युपेक्षणाय अगमुः x प्रत्युपेक्षणानन्तरं जिनदत्तेन पृष्टाः यदुत किं आचार्याः अत्र आगमिष्यन्ति नवा? इदं क्षेत्रं योग्यं नवा? x तैः उक्तं - वर्तमानयोगेन x जिनदत्तोऽचिन्तयत् - अत्र न कोपि आचार्याः अवतिष्ठन्ते x स कमपि ऋजुसाधुं ~~अपृच्छत्~~ कारणं x साधुना ऋजुतया उक्तं यत् अत्र शालिः न लभ्यते, आचार्यस्य तु शाल्योदनः प्रायोग्यः x जिनदत्तो अन्यग्रामात् शालिबीजं आनीय क्षेत्रे वापितवान् x प्रभूतः शालिः सम्पन्नः x ते सालयः ग्रामे प्रतिगृहं प्रैष्यन्त गृहपतयः च उक्ताः यत् एते शालयः साधवे देया x यदा साधवः आगमुः तदा ते एतेभ्यः शालिभ्यः ओदनमपि तप्तवन्तः किंतु साधवः क्वापि विविधवाद्यानि अश्रुण्वन् यदुत कोपि बालः मात्रे कथयति यत् मातर् मह्यं क्षीरशालयः साध्वर्थं उपकल्पन्ते तेन दीर्घं इत्यादि। तानि वाक्यानि श्रुत्वा साधवः चिन्तयामासुः यदुत एतत् सर्वं आधाकर्म। एवं आधाकर्म-अशन-निरचिन्वन् सम्भावना उक्ता।

(गा.168) ★ पानस्य आधाकर्मसंभावना उच्यते - कथानकं तु सर्वत्रैव, नवरं - अस्मिन् ग्रामे सर्वेऽपि कूपा क्षारोदका आसीरन्। क्षारोदका अप्रत्यक्षोदका विज्ञेयाः। ततः कोऽपि ऋजुः साधुः (अज्ञातपत्नी) उक्तवान् यत् - अत्र मधुरोदकं न लभ्यते। ततः स श्राद्धः मधुरोदका कूपा खानितवान् ततः बालादीनां उत्तापेयः साधवः ~~x~~ जानीयुः यत् एतत् सर्वं आधाकर्म।

(गा.169) ★ खादिम स्वादिमयोः आधाकर्मसंभावनां आह - आम्रफलं, दाडिमः द्राक्षाः, एतान् आश्रित्य खादिमविषये पापकरणं भवेत्। शुण्ठीपिप्पलीमरीचकादिकं आश्रित्य स्वस्वादिमे पापकरणं भवेत्। साधूनां औषधार्थं अमूनि कल्पन्ते इति मनसि सवधा तेषां रोपणादिकरणात् आधाकर्मसंभवः।

(गा.170) ★ तत्र कृतनिष्ठितशब्दयोः अर्थं आह - पूर्वोक्तमेव यत् कृतं भी इति कर्तुं प्रारब्धं, निष्ठितं इति सर्वथा प्रासुकीकृतं।

(गा.171) ★ एतदेव विशेषयति - वपनात् आरभ्य द्विगुणोत्कण्डनं यावत् कृतं इत्युच्यते। त्रिगुणोत्कण्डनं निष्ठितं इत्युच्यते। एवं सर्वं तु चतुर्षु अपि अशनादिषु एष अर्थः अवसेयः।

(गा.172)★ परपक्ष - साधु के लिए आरोपित वृक्ष की छाया भी आधाकर्मी होने से अगीतार्थ उसका वर्जन करते हैं।

उत्तर - छायावर्जन योग्य नहीं है क्योंकि द्वितीय भांगे में 'तस्य कृतं अद्यार्थं निष्ठितं' में वाला पेड़ का फल भी साधु को कल्पता है तो, छाया तो सर्वथा साधु सत्ता वाली नहीं है।

(गा.173) ★ वह छाया भी केवल वृक्ष के निमित्त से नहीं है किंतु सूर्य के हेतु से है। तथाहि - छाया पार्श्वतः सर्वत्र आतपपरिवेष्टितपुद्गलात्मक आतपाभावः। वह छाया सूर्य के अन्वय व्यतिरेक वाली है। पेड़ तो उसका मात्र निमित्त है। वृक्ष आरोपक द्वारा छाया के संकल्प का भी अभाव होता है। यदि छाया आधाकर्मी हो तो सूर्य बादल से ढंकने पर छाया नष्ट होती है तब पेड़ के नीचे रहना कल्पता है और जैसे सूर्य दिखे वैसे ही पेड़ के नीचे नहीं कल्पता।

(गा.174) ★ परपक्ष को अन्य दूषण कहते हैं - छाया तो सूर्य की गति प्रमाणे छोटी-बड़ी होती है। इसलिए सूर्योदय और अस्त के समय में वह छाया इतनी बड़ी होती है कि पूरे गांव के में व्याप्त हो सकती है।

इसलिए छाया से स्पृष्ट गाँव भी द्युति कर्म वाला होता है। ऐसा कहीं आगम में कहीं भी नहीं लिखा है। इसलिए वृक्षछाया आधाकर्मी नहीं है अन्य दूषण कहते हैं - गा. 175 जैसा ही।

(गा.175) ★ परपक्ष वाले नहीं स्वीकारते हैं तो उन्हें आश्वासन देते हैं - द्वितीय भंगो में कर्त्य भी कर्त्यता है तो छाया सेवन में कोई दोष नहीं है किंतु तुम्हें यदि उसमें दोष लगता है तो तुम छोड़ो। छाया छोड़ने में पर भी तुम अदोष वाले ही रहोगे।

(गा. 176) ★

(177-178) ★ (III) स्वपक्ष और परपक्ष द्वार की व्याख्या करते हैं - परपक्ष = गृहस्थ स्वपक्ष = साधु-साध्वी। यहाँ भी कृत-निष्ठित की चतुर्भंगी है।

(179) ★ (IV) अतिक्रमादि 4 प्रकार द्वार की व्याख्या - आधाकर्म के विषय में 4 दोष संभव है - अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार। सूत्रकार इनकी व्याख्या और दृष्टांत देते हैं -

(180) ★ प्रथम आधाकर्म निमंत्रण को समझाते हैं - शालिओदनादि रसोई, साधु के लिए उत्पन्न कर कोई अभिनव श्राद्ध साधु को आमंत्रण दे।

(181) ★ इस प्रकार आधाकर्म ग्रहण में 4 दोष होते हैं। उसमें आगे-आगे के दोष से जनित पाप से आत्मा को बचने में बहुत अधिक-अधिक कष्ट होता है। दृष्टांत - नूपुरपंडिता कथानक में अंत में राजा रानी, महावत और हाथी को पर्वत की टोंच से खाई में गिरने की सजा देता है। हाथी पर्वत की टोंच पर पहुँचा। राजादेश से हाथी का एक पैर ऊँचा होता है, उस समय के हाथी को पीछे हटाने उतारना सरल है, दो पैर ऊँचे हो तो थोड़ा कठिन है, तीन पैर ऊँचे

हो तो और कठिन और यदि चार पैर फेंके करे तो मृत्यु।
इसी प्रकार साधु पहला अतिक्रम दोष से सरलता से पीछे हट सकता है, अतिक्रम-व्यतिक्रम से थोड़ा कठिन, तीन दोष से बहुत कठिन और चारों दोष सेवने पर साधु संयम रूपी आत्मा का विनाश करता है।

(182) ★ दोषों का स्वरूप- 1. अतिक्रम = आधाकर्म के निमंत्रण को सुनना।
2. व्यतिक्रम = पात्र ग्रहण करने से लेकर आधाकर्म लेने के लिए घर में पात्र पसारने तक।
3. अतिचार = गोचरी लेने से लेकर कवल मुँह के पास लाने तक।
4. अनाचार = कवल गले में नीचे उतारने पर।

(183) ★ (VI) आधाकर्म ग्रहण में 4 दोष - आधाकर्म ग्रहण में 4 दोष होते हैं -
1. आज्ञाभंग 2. अनवस्था 3. मिथ्यात्व 4. विराधना।

(184) ★ 1. आज्ञाभंग = सभी तीर्थंकर प्रभु की आज्ञा है कि साधुओं को आधाकर्म छोड़ना चाहिए। जो साधु आधाकर्म ग्रहण करता है, वह भगवान की सभी आज्ञा का उल्लंघन करता है। जिनाज्ञा का उल्लंघन करता वह साधु किसकी आज्ञा में है? अर्थात् किसी की नहीं। इसलिए लोच, पैत्ते कपड़े, भूमिशयन, पादत्राण आदि सर्व क्रिया निष्फल है।
सर्वस्यापि सर्वज्ञाऽऽज्ञाभङ्गकारिणोऽनुष्ठानस्य नैष्फल्यात्।

(185) ★ 2. अनवस्था = इह प्रायः सर्वेऽपि प्राणिनः कर्मगुरुतया दृष्टमात्रसुखाभिलाषिणः, न दीर्घसुखदर्शिनः। इसलिए एक साधु द्वारा आधाकर्म ग्रहण देखकर अन्य भी सेवन चालू कर देते हैं। इस प्रकार परंपरा से संयम-तप का सर्वथा व्यवच्छेद होगा, तदव्यवच्छेदे तीर्थव्यवच्छेदः।

(186) ★ 3. मिथ्यात्व = इह यद् देशकालसंहननानुरूपं यथाशक्ति यथावद-नुष्ठानं तत्साध्यकत्वं। इसलिए आधाकर्म ग्रहण करता साधु मिथ्यादृष्टियों में प्रमुख है, महामिथ्यादृष्टित्वात्। वह स्वयं प्रच्छन्न से विपरीत आचरण करता है और परंपरा से अन्य को भी धर्म में शंका उत्पन्न करता है।

(187) ★ यदि कोई साधु एक बार भी आधाकर्म ग्रहण करता है तो रसलंपटता से पुनः ग्रहण में प्रवर्तता है। इस प्रकार स्वयं को भी प्रसंग बढ़ाता है। धीरे-धीरे उसे अत्यंत लंपटता होती है जिससे उसके हृदय से दया के संस्कार ही मिट जाते हैं। फिर वह सचित्त फलादि का भी ग्रहण करता है। इस प्रकार जिनाज्ञा से दूर होता हुआ मिथ्यात्व को प्राप्त होता है।

(188) ★ 4. विराधना = आधाकर्म प्रायः प्रायूर्णक के लिए ही किया जाता है। इसलिए बहुत स्वादु, स्निग्ध भोजन से रोग होते हैं, इस प्रकार आत्म विराधना। रोगी को सूत्र-अर्थ की हानि। यदि चिकित्सा नहीं करवाता है तो संयम भी भ्रष्ट और यदि चिकित्सा कराता है तो छकाय विराधना। इस प्रकार संयम विराधना। उसकी वैयावच्च करने वाले की भी सूत्रार्थ हानि, छकाय विराधना करने और अनुमोदना से संयम विराधना। कभी पीड़ा को नहीं सहन करने के कारण वह वैयावृत्त्य करने वालों पर कोप करता है जिससे क्लेश होता है, इस प्रकार क्लेश करने से कदाचित् वैयावृत्त्य कर भी रोगी होते हैं जिससे उनकी चिकित्सा में भी छकाय विराधना।

आधाकर्म की मूल द्वार गाथा (५५) पूर्ण हुई।

(189) ★ आधाकर्म की अकल्प्य विधि कहते हैं- (I) आधाकर्म अकल्प्य और अभोज्य है (II) आधाकर्म से स्पृष्ट भी कल्प्य अकल्प्य (III) जिस भाजन में आधाकर्म डाला हो, वह भाजन खाली होने पर भी तीन कल्प से प्रक्षालन नहीं करने पर उसमें डाला शुद्ध भी आहार अकल्प्य है। (IV) आधाकर्म का त्याग विधि-अविधि से (V) ग्रहण किया हुआ आधाकर्म भी अदोष है। यह द्वार है।

(190) ★ अविधि परिहार के दोष और विधि परिहार में पृच्छा कैसे करनी या न करना, वह कहेंगे। जयणा करते साधु को प्रयत्न का प्रसंग है किंतु यतमान साधु को प्रयत्न के संभव के दृष्टांत कहेंगे।

(191) ★ (I) आधाकर्म की अकल्प्यता के लक्षण कहते हैं- बापरने के पहले सुंदर प्रसाद वाले ओदनादि भोज्य होते हैं किंतु वही ओदनादि वान्त (वमे हुए) अभोज्य होते हैं। वैसे ही असंयम ग्रहण करते हुए साधु को असंयमरूप आधाकर्म वमा हुआ है। और विवेकी जीवों को वान्त अभोज्य होता है।

(192-193) ★ दृष्टांत- वक्रपुरं x उग्रतेजाः पदातिः x तस्य भार्या रक्तिणी x तस्य ज्येष्ठभ्राता सोदासः x सोदासः प्रत्यासन्नग्रामात् समाययौ x उग्रतेजाः मांसं कस्मिणेयै पक्तुं दत्तवान् x तन्मांसं भार्ज्जारो सभक्षयत् x सा व्याकुलीबभूव x कोऽपि स्ता मांसं तस्याः साक्षात्पश्यन्त्याः पुरतः वमितवान् x ततः साऽचिन्तयत्- यदि अहं विपणेः क्रीत्वा मांसं आनयामि तर्हि तारं लगति, ज्येष्ठपत्योः भोजनवेला समागच्छेत्, तर्हि इदमेव मांसं पक्त्वामि x तथैव तथाकृतं x यदा सौ भोजनाय उपविष्टौ तदा गन्धेन ज्ञातेजाः ज्ञातवान् x तेन रक्तिणी पृष्टा x भयेन सा सत्यं अकथीत् x एवं पुरोषं अपि विवेकिनां अभोज्यं इति सिद्धं दृष्टांतः - पूर्ववत् नवरं तया वमनात् मांसं गृहीत्वा → पुरीषात् मांसखण्डानि गृहीत्वा

उपस्कृत्य परिवेषितवती।
इति द्राभ्यां दृष्टान्ताभ्यां वमनं च पुरीषं च अभोज्यं इति सिद्धम्। एवं साधुना आधाकर्मापि अभोज्यं।

(194) ★ दार्ष्टान्तिक - यद्वत् वैद्यै अविलोष्ट्र्योः क्षीरं लशुनं गोमांसं च इत्यादि अभोज्यं उक्तं तथा जिनशासनेऽपि आधाकर्म अभोज्यं अपेयं च उक्तं। यदि कोऽपि युक्तितः आधाकर्म अभोज्यं इति सोचितुं इच्छति तन इयं युक्तिः संयमप्रतिपत्तौ असंयमवमनेन आधाकर्मापि वान्तं, न च वान्तं पुरीषं वा भोज्यं। अथवा मा भूत् युक्तिः, वचनप्रामाण्यादेव अभोज्यं अवसेयं, यथामिथ्यादृष्टयो वेदेषु निषिद्धं वचनप्रामाण्यादेव प्रतिपद्यन्ते। उक्तं

(195) ★ (III) स्पृष्ट भी अकल्प्य - कोई सुंदर उपहार यदि अशुचि पर स्थापन कराए अथवा स्थापन तो दूर किंतु अशुचि के लेश से स्पृष्ट भी हो जाए तो वह जैसे अभोज्य होता है वैसे आधाकर्म से स्पृष्ट शुद्ध आहार भी अभोज्य है।

(196) ★ (IV) भाजन में स्थित की अकल्प्यता कहते हैं - जिस पात्र में आधाकर्म लिया हो, वह आधाकर्म रहित होने पर भी शुद्ध आहार उस पात्र में लेना कल्पता नहीं है। उस पात्र की शुद्धि तीन कल्प से की जाती है फिर उस पात्र में वापरना कल्पता है। युक्तिः इयम् - लोक में भी जिस भाजन में विष्ठा पड़ी हो अथवा पूर्ण पात्र में पर विष्ठा गिरी हो, वह उस पात्र का प्रक्षालन किए बिना वह भाजन में स्थित भक्त अभोज्य होता है। इसी प्रकार पुरीष की जगह संयमियों को अधाकर्म होता है।

(197) ★ (V) आधाकर्म का त्याग - त्याग दो प्रकार - विधि और अविधि पूर्वक।

(198-200) ★ अविधि परिहार का दृष्टांत - शालि ग्रामः × ग्रामणीः वणिक् × ग्रामणीः तस्य भार्या

एकदा कोऽपि अगीतार्थसाधुः तद्गृहे प्रतिवेश× तद्भार्या शाल्योदनं भावितवान्× स अपृच्छत् 'एषशालिः कुतः?'× सा उवाच - नाहं जाने, वणिक् जानाति× ततो स विपणौ गत्वा वणिजं पप्रच्छ× वणिजा उक्तं- गोबरग्रामाद् आगतः एष शालिः× स तत्र गन्तुं प्रावर्तत× केनापि श्रावकेण स्वयं मार्गः साधते कृतः' इति शंकां कृत्वा उन्मार्गेण गन्तुं प्रावर्तत× 'उत्पथे कण्टकशापदादिभिः अभिभूयते नापि च दिशं जानाति× वृक्षछायां अपि शंकया परिहरन् स साधुः मूर्च्छां प्राप।

(201) ★ एवं अविधिपरिहारेण साधुः ज्ञानादीनां आभागी न भवति ततः विधिना ~~भोज्यं~~ परिहर्तव्यं।

(202-203) ★ विधिः ~~द्रव्यक~~ द्रव्यकुल देशभावान् आश्रित्य ~~असत~~ भवति। द्रव्यादीन् एव आह -

1. द्रव्यं - शाल्यादिकूरः, माणकादिः, सक्तुः, कुल्माषः, मुद्गः आदिः।
2. कुलं - अल्पजनं बहुजनं वा।
3. देशः - सौराष्ट्रादिकः
4. भावः - आदरोऽनादरः वा

कोई जगह तीन, कोई जगह चार पद भी होते हैं।

(204) ★ किस प्रकार के द्रव्यादि होने पर कैसे पृच्छा करना, वह कहते हैं -

→ जब उस देश में असंभव द्रव्य प्रचुर प्रमाण में मिले, कुल में अल्पजन हो, आदर भी बहुत हो, तब पृच्छा करना। द्रव्यादि ५ कहे।

→ उस देश में संभव द्रव्य प्रचुर हो → महत् कुल → नहीं पृच्छा
↳ अल्प कुल → पृच्छा

→ यदि आदर अतिशय → पृच्छा
अनादर → न पृच्छा

(205) ★ पृच्छा करने के बाद वह वस्तु ग्राह्य कब हो, वह कहते हैं -

→ पृच्छा करने पर यदि कोई श्राविका कह दे कि आपके लिए बनाया है

→ अथवा पूछने पर सब एक-दूसरे के मुँह देखे अथवा हँसे, तो वह भक्त
→ यदि पूछने पर कोई श्राविका रही में गुस्सा करे तो निःशंक होकर आधाकर्म ग्रहण करे।

(206) ★ (I) आधाकर्म शुद्ध आहार की बुद्धि से ग्रहण किया गया भी अदोष है —
पूर्वपक्ष — जो श्रावक या श्राविका अतीव भक्ति से आधाकर्म आहार
बनाए तथा बोराते समय एकदम गंभीर हो, साधु का अनादर करे,
झूठ भी बोले तो साधु की शुद्धि कैसे होगी?

(207) ★ उत्तरपक्ष — यदि शुद्धाहारभोजी साधु भी आधाकर्मपरिणत है तो वह अशुभ
कर्म का बंध करता है, अशुभपरिणामस्यैव वस्तुस्थित्या बन्धकारणत्वात्
शुद्धाहार की गवेषणा करता साधु यदि आधाकर्म भी वापरे तो वह शुद्ध
है, शुद्धपरिणामयुक्तत्वात्।

(208) ★ दृष्टांत — शतमुखं पुरं × गुणचन्द्रः श्रेष्ठी × चन्द्रिका भार्या × श्रेष्ठी जिनमन्दिरं प्रतिष्ठा-
-पितवान् × संघभोज्यं आरब्धम् × पत्यासन्नात् ग्रामात् एकः साधुः जनपरम्परया
पुरुषः
श्रुत्वा तत्र आगच्छत् × तेन याचितं × श्रेष्ठिनी उवाच सर्वं समाप्तं × तेन पुनरपि
याचितं ×
श्रेष्ठी अभ्यर्थ्यापि - निजरसवतीमध्यात् साधवे दत्ते × सा शुद्धाहारं ददात् × तं
श्रेष्ठिना
शुद्धं अपि आधाकर्मबुद्ध्या भुञ्जानः स साधुः कर्मणा बद्धः। एवं उपनयं वचनं
सिद्धं।

(209-211) × सम्प्रति अन्येन दृष्टान्तेन द्वितीयं वक्तं सिद्ध्यन्ति — पोतनपुरं × रत्नाकरसूरयः पञ्चशत
साधुभिः समवसृताः × तेषां मध्ये एकः पियङ्करः नाम क्षपकः × स मासमास पर्यन्ते पारणकं करोति ×
'मद्पारणकं आधाकर्म मा भूत्' इति चित्ते निश्चित्य स पत्यासन्ने ग्रामे जगाम × तत्र
यशोमतिः श्राविका × सा जनपरम्परया श्रुतपारणकं तिक्तीष्टपायसं अपचत् × तया डिम्भाः
शिक्षिताः यदा स साधुः समागच्छेत् तदा यूयं भणत यद् अस्माकं क्षीरेयी न रोचते,
एवं चोक्ते अहं भुक्त्वा निर्मत्सरिष्यामि' × स साधुः अरन् तत्रैव अगात × ततः बालैः तथैव कृतं ×

तया सकथितः यत् एष्यः बालेभ्यः दौरेयी न रोचते, यदि तव रोचते तर्हि गृहाण अथवा व्रजत

× एवं अनादरे सति स क्षपकः निःशङ्कं अगृह्णीत् × स आधाकर्म भुञ्जानोऽपि विशुद्ध-

अध्यवसायैः केवलं आपद्यात् । एवं अन्येषां अपि विशुद्धबुद्ध्या आधाकर्म भुञ्जानानां

न दोषः भगवदाज्ञाराधनात् ।

(212-216) ★ भगवदाज्ञाराधनकृतमेवादोषं, भगवदाज्ञाखण्डनकृतमेव दोषं इति भावयितुं दृष्टान्तं

साह - चन्द्राननापुरी × चन्द्रावतंसो राजा × राज्ञः द्वे उद्याने, एकं प्राच्यां द्वितीयं सूर्योदयं,

द्वितीयं पश्चिमायां चन्द्रोदयं × एकदा राज्ञा घोषितवान् जनाः प्रभाते राज्ञा अन्तःपुरिकाभिः

सह सूर्योदये उद्याने विहरिष्यति ततः तत्र कोऽपि मा न यासीत्, सर्वेऽपि चन्द्रोदयं गच्छन्तु

× राज्ञा उद्यानं रक्षितुं पदातयः नियुक्ताः × रात्रौ सुप्तं राजा अविचारयत् सूर्योदयं गच्छतां

अस्माकं प्रभाते अपि सूर्यः प्रत्युषसं भवति, मध्याह्ने निवर्त्तमानानां अपि, अतः वयं चन्द्रोदये

गन्तारः ; × तथैव कृतं × कैश्चित् दुराचारितः पटहं श्रुत्वा सूर्योदयस्य वृक्षशाखासु लीनवन्तः ; ते राक्षसैः

बद्धाः × चन्द्रोदयेऽपि कैश्चित् जनाः बद्धाः, × राज्ञा सूर्योदये बद्धाः नाशिताः, चन्द्रोदये बद्धाः

अन्तःपुरिकाः दृष्ट्वा अपि मुक्ताः, आज्ञाऽऽराधनत्वात् तेषां ।

(217) ★ आधाकर्मभोजिनं एव निन्दन्ति - कपोतः स्वस्य लुंचनं करोति, किन्तु तस्य लुंचनं न धर्माय,

कायक्लेशायैव, एवमेव आधाकर्मभोजिसाधोः शिरोलुञ्चनादिक्रियाः निष्फलमेव ।

(218) ★ भणितं आधाकर्मद्वारं, साम्प्रतं औद्देशिकं वक्ष्ये ।

(219) ★ औद्देशिकं द्विविधं - ओघ विभाग ।

1. ओघ औद्देशिक - स्व या पर विभाग किए बिना कुछ अन्न प्रक्षेप करके करना (भोजन बनने के पहले) । यह स्थापन भी किया जाता है ।

2. विभाग - विवाहादि में जो अधिक हो उसमें 'यह साधु को देंगे' इस प्रका अलग विभाग करना । (सस्ता से उतारकर)

विभाग औद्देशिक (12)

उद्दिष्ट | कृत | कर्म

3 x 4 = 12 → (a) उद्देश (b) समुद्देश (c) आदेश (d) समादेश

(i) उद्दिष्ट - खुद के लिए तैयार अन्न, साधु को देने के लिए अलग कल्पना करना।

(ii) कृत - खुद के लिए तैयार अन्न में साधु के दान के लिए कुछ फेरफार करना eg. शालि - ओदन → करबा बनाना।

(iii) कर्म - विवाहादि में बढ़ा हुआ जो मोदकादि का चूर्ण है उसमें और ज्यादा गुड़ादि डालकर फिर से मोदक बनाना।

(220) ★ ओघ औद्देशिक - पूर्व में स्थाप्यता का संभव कहते हैं - दुर्भिक्ष काल में कुछ गृहस्थ सोचते हैं कि यदि हम दूसरे को दान देंगे तो हमें भी खाने को नहीं मिलेगा इस प्रकार इसका संभव है।

(221) ★ ओघ औद्देशिक का स्वरूप - गृहस्थी 'कोई भी भिक्षुक आएगा तो थोड़ा उसे भी दूँगी' ऐसा सोचकर वह स्वयं के लिए पकते भोजन में थोड़ा और मिला देती है, उसमें 'यह साधु का, यह हमारा' ऐसा विभाग नहीं करती।

(222) ★ प्रतिपक्ष - अन्यगृहस्थ इस दोष को कैसे जान सकता है।

(223) ★ उत्तर - यदि ऐसा ओघौद्देशिक गृहस्थ ने किया होता है तो उनकी चेष्टादि होती है। - (i) कोई गृहपति आर्या को कहे कि पांच भिक्षा तो दे दी है, अब शेष (ii) कोई भिक्षा गिनते गिनते भिक्षा दे (iii) गिनने के लिए दीवाल पर रेखा करे। (iv) किसी को कहे कि उसमें से मत दो, इस पेटी में से दो (v) कोई किसी को कहे कि साधु को देने के लिए अलग करो।

इस प्रकार उपयुक्त साधु जान सकता है। अलग की हुई भिक्षा के स्थापना सभी आहार कल्पे।

(224-227) ★ साधु के उपयोग को दृष्टान्त से समझाते हैं - गुणाल्यं नगरं x सागरदत्तश्रेष्ठी x श्रीमती भार्या x नूतनजैनमन्दिरं श्रेष्ठिना कारितं x चत्वार तनयः - गुणचन्द्र, गुणसेन, गुणचन्द्र, गुणशेखर

उद्दिष्टादि प्रत्येक

छिन्न
+ द्रव्यादि ५

अछिन्न
+ द्रव्यादि ५

चत्तस्रः वध्वः x गृहे सवत्सा गौः विद्यते x गौः दिवसेदात्रि गच्छति, वत्सः तु गृहे एव तिष्ठति x तस्मै चारिं पानीयं च वध्वः ददति x एकदा गुणचन्द्रस्य पुत्रस्य विवाहोत्सवं उपस्थितं x वध्वः तस्मै वत्साय चारिं दातुं विस्मरिं विस्मृतवत्यः x मध्याह्ने श्रेष्ठी तत्र गतः, तं दृष्ट्वा वत्सः आरोदितुं आरब्धं x ततः श्रेष्ठी चतस्रः वधूः निर्भर्त्स्य चारिं प्राप्तं x ततः वधूः एका चारिं स्वस्थं गृहीत्वा अग्निवत्सं चचाल x वत्सः आयान्तीः ताः वधूः सज्जितं गृहं वा न रागदृष्ट्या परिभावयति किंतु तद्दृष्टिः तु केवलं चारिं उपरि अस्ति। एवं साधुः अपि केवलं भिक्षायां एव उपयुक्तः भवेत्, न अन्यस्मिन्।

(228) ★ विभाग औद्देशिक का संभव -

(प्र.13) संखडिः = संखड्यन्ते व्यापाद्यन्ते प्राणिनो ऽस्यां इति।

विवाहादि संखडि में शाल्योदनादि प्रचुर हो, ज्यादा हो तो गृहपति कहे कि भिक्षाचरों को पुण्य के लिए दो। उसमें यदि वैसा ही दे तो उद्दिष्ट, कुछ फेरफार करे तो कृत, पक्व पर चढ़ाकर फेरफार करे तो कर्म)

(229-230) ★ तीनों विभाग औद्देशिक के प्रभेद - (i) औद्देशिक - यावदर्थिक, चित्र-सभी भिक्षाचर
(ii) समुद्देश - सिर्फ पाखंडियों के लिए (iii) आदेश - सिर्फ श्रमण (जैन, बौद्ध, सांख्य)
(iv) समादेश - सिर्फ निर्ग्रन्थ (जैन)।

(231) ★ → उद्दिष्टादि में प्रत्येक के भेदान्तर भेद - (i) छिन्न = नियमित (ii) अछिन्न = अनियमित
→ दोनों के प्रभेद - द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव।
→ कृत और कर्म औद्देशिक के लिए एक शब्द - निष्पादितनिष्पन्न।
गृहस्थ द्वारा स्वयं के लिए पकाया हुआ = निष्पादित। उस निष्पादित अन्न से किया गया = निष्पन्न।

(232) ★ ~~छिन्न~~ अछिन्न की व्याख्या - अनियमित द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से कोई

गृहपति दान दे वह आच्छिन्न है, औद्देशिक। द्रव्य से - सभी द्रव्य मोदकादि, क्षेत्र से - घर के अंदर या बाहर, काल से - कोई भी समय या कितने ही दिन तक भाव से - देनेवाली साधु को रुचे या न रुचे तो भी देना।

(233) ★ ~~अच्छि~~ छिन्न की व्याख्या - द्रव्य से - शाली ही देना, कूरादि नहीं; क्षेत्र से घर के अंदर ही देना, बाहर नहीं; काल से इस प्रहर से इस प्रहर तक ही देना, उसके अलावा नहीं; भाव से - देने वाली स्त्री को रुचे तो ही देना, अन्यथा नहीं।

(234) ★ विभाग औद्देशिक में उद्दिष्ट की कल्प्याकल्प्य विधि - छिन्न में निमित्त कालादि के अलावा कल्पता है। अछिन्न - नहीं कल्पता, यदि आच्छिन्न भी लाए में आत्माधीकृत किया जाए तो कल्प्य।

(235) ★ देने वाले पात्रक की अपेक्षा से कल्प्याकल्प्य विधि - यावदर्थिक जहाँ भी साधु का निर्देश विशेष या अविशेष से हो, वह अकल्प्य। यदि सिर्फ गृहस्थ को देने का उद्देश्य है तो कल्प्य।

(236) ★ → ≠ ये दे, बाकी मत देना कोई साधु ऐसा सुने तो उस साधु को 'यह' से (सुननेवाले) संदिष्ट आहार भी कल्पता है, दूसरे को नहीं। यहाँ सिर्फ उद्दिष्ट ही कल्प्य, कृत-कर्म अकल्प्य।

जो ~~सम्म~~ सुनता नहीं है उसे स्थापना दोष से अकल्प्य।

सुनने वाला साधु अन्य साधुओं को कह दे कि इस घर में मत जाना।

(237) ★ औद्देशिक जानने के उपाय - भिक्षा देती हुई स्त्री को कोई निषेध करे कि 'यह मत, यह दे' तो साधु पूछे कि निषेध क्यों किया?

→ देती हुई स्त्री को कोई कहे कि जितना उतना ठीक, उसे मत देना तो आत्मीकृत किया हुआ वह द्रव्य कल्प्य। उद्दिष्ट औद्देशिक भणित।

(238-9) ★ कृत औद्देशिक के संभव और स्वरूप – (i) स्वप्राजनहेतु – दही से ये भाजन रूका हुआ है इसलिए करबा बनाकर इसे खाली करूँ, जिससे दूसरे काम में आए। (ii) अभिप्रेत दधि खराब हो जाएगा और खराब तो साधु को नहीं देंगे। (iii) दधि मिश्रित ओदन एक ही ग्रास से जल्दी छोड़ा सकते हैं इत्यादि। स्वरूप – दधि आदि से ओदन मिश्र करे, कुछ फेरफार संभव हेतु – (i) यदि मोदक का चूर्ण छोड़ाऊँगी तो साधु निंदा करेंगे (ii) एकत्र पिंड जल्दी से दिया जा सकता है (iii) मोदक-चूर्ण आदि खाने के लिए बार-बार रसोई में घूमना पड़ता है (iv) छोड़ने में चूरा गिरता है। स्वरूप – गुड़-घी से चूर्ण को फिर से मोदक बना दे।

(240) ★ कर्म औद्देशिक संभव और स्वरूप – कृत औद्देशिक जैसा ही, सिर्फ कर्म में गर्म किया जाता है, कृत में चूल्हे आदि पर गरम नहीं करते।

(241) ★ कृत-कर्म औद्देशिक की कल्प्याकल्प्यविधि – वह द्रव्य कृत या कर्म करने के पहले कल्पता है किंतु 'आप आगे जाकर आओ फिर मैं देती हूँ' ऐसा कहे तो वह पिंड कृत और कर्म करने के बाद नहीं कल्पता।

(242) ★ → कर्मौद्देशिक यावदर्थिक आत्मार्थीकृत कल्पता है। शेष यानि यावदर्थिक को छोड़कर, शेष आत्मार्थीकृत भी अकल्प्य।

→ आधाकर्म – कर्म औद्देशिक में अंतर – ~~xxx~~ प्रथम से ही साधु के लिए बनाया हुआ आधाकर्म किंतु रहने हुए का फिर से संस्कार करना वह कर्मौद्देशिक।

औद्देशिकद्वार पूर्ण।

3. पूतिकर्म

(243)* → नाम
→ स्थापना } सुगम
→ द्रव्य
→ भाव

(244) * द्रव्य पूति – कोई सुगंधी विशिष्ट द्रव्य में दुर्गंधी अशुचि द्रव्य मिलाना वह द्रव्य पूति।

(245-6) साम्मित्यं पुरं x बहिरुद्याने माणिभद्रो यक्षः x पुरे शीतलकाभिधं श्राद्धं उपतस्थे x कैश्चित् तस्य यक्षस्य औपयाचितकं इष्टं यद् वयं श्राद्धाद् निस्तराम: तर्हि तव उद्यापनिकां वयं कुर्मः x श्राद्धाद् निस्तीर्णाः x तैः देवशर्मा पूजाकारकः उक्तः गोमयेन उपलिम्पेः यक्षसभां तत्पश्चात् वयं आगत्य उद्यापनिकं कुर्मः x स गोमयं आनेतुं कस्मिंश्चिद् गोपालके जगाम x तत्र केनापि कर्मकरेण अतिदुर्गंधिवत् पुरीषं रात्रौ व्युत्सृजतं x तस्मिन् पुरीषे कापि गोः कथमपि छगणपोहं मुक्तवती x तं सकलं गोमयं देवशर्मा नीत्वा सभां उपलिम्पत् x ते सर्वे आगत्य नानाविधं भोजनं लिम्पनोपरि स्थापितवन्तः x तेषां अतिदुर्गन्धः समायातः x तैः देवशर्मा पृष्टः x तेनोक्तं न जाने x तैः लेपनमध्ये वल्लचणादि अवयवाः ददृशिरे x जज्ञे च लेपनमध्ये पुरीषं अस्ति x सर्वं भोजनं अशुचि इतिकृत्वा त्यक्तं।

इक्ता द्रव्य पूतिः।

(247)* भाव पूतिः- अविशोधि उद्गमकोटी के अवयव मात्र से मिश्रित शुद्ध अशनादि भी चारित्र को अपवित्र करते हैं, इसलिए ऐसे अशनादि भाव पूति है।

(248)* उद्गमकोटी = 1. आधाकर्म 2. कर्म औद्देशिक के सम उद्देश समुद्देश आदेश 3. मिश्र में पाखंडिसाधु मिश्रजात 4. बादर प्राभृतिका 5. अध्यवपूरक 6. पाखंडि, साधु भेद। भाव पूति

(249)* भाव पूति
बादर — सूक्ष्म
उपकरण विषयक — भक्तपान विषयक

★ उपकरण पूति = अकृतकल्पत्रय आधाकर्मी उपकरण में शुद्ध आहार।
★ भक्त पूति = शुद्ध आहार में आधाकर्मी आहार का अंश mix होना।

PAGE : 43
DATE : / /

(250) ★ द्वार गाथा - उपकरण पूति, भक्त पान पूति

(251) ★ उपकरण पूति - जो देते हुए भक्त पर उपकार करे, वह उपकरण।

(252) ★ → आधाकर्मी चूल्हा-थाली = जिस चूल्हे या थाली में पहले से आधाकर्म बना हो किंतु तीन कल्प न किए हो, वह। अथवा जो चूला या थाली साधु के लिए Special रखे हो। (जिसमें चूल्हे पर भोजन पकाया जाए)

→ चूला-थाली आधाकर्मी चतुर्भंगी - 1. चू. था. ✓ 2. चूला ✓ थाली × 3. था. ✓ चू × 4. चू. था ×।

→ चतुर्भंगी की कल्प्याकल्प्य विधि - (i) प्रथम 3 भांगे में ऊपर रहा हुआ अकल्प्य
(ii) यदि गृहस्थ स्वयं के लिए चूले-थाली पर से अन्न अन्य जगह ले जाए तो कल्प्य।

(253) ★ द्वार गाथा का पहला अवयव - चुल्ली = चूला, उखा = थाली, डोय = बड़ा दर्वी = छोटा चम्मच। यदि ये उपकरण आधाकर्मी हो और उनसे बना चम्मच अशनादि उपकरण पूति। (उपकरण पूति)

→ डोय की कल्प्याकल्प्य विधि - यदि डोय गृहस्थ के लिए थाली से निकाल ले तो वह द्रव्य कल्प्य।

(254) ★ दर्वी की कल्प्याकल्प्य विधि - (i) अशनादि शुद्ध, आधाकर्मी दर्वी = दर्वी निकालने पर कल्प्य। (ii) शुद्ध अशनादि, शुद्ध दर्वी किंतु आधाकर्मी से खरड़ी हुई = भक्त पूति, अकल्प्य ; दर्वी निकालने पर भी अकल्प्य।

★ भक्त पूति = शुद्ध आहार में आधाकर्म आहार का अवयव mix होना।
eg. आधाकर्मी हिंग, जीरे को शुद्ध तक्र में डालना।

(255-6) ★ eg. तक्र में राई-जीरा-हिंग का बघार करना। थाली में आधाकर्म बनाकर (आधाकर्मी)
उस थाली को खाली कर उसमें शुद्ध आहार बनाना। उक्ता बादर पूति।

PAGE :
DATE : / /

(257) ★ सूक्ष्मपूति — आधाकर्म ईंधन, अंगार का अवयव, धूम, गंध, बाष्प से मिश्र शुद्ध अशनादि। यह सूक्ष्मपूति आगम में निषेध नहीं की गई, इसलिए कल्प्य है।

(258) ★ प्र. पूर्वपक्ष – यति वर्जन योग्य है तो निषेध क्यों नहीं है?

उत्तर – यदि इनका वर्जन करेंगे तो साधु की शुद्धि संपदा कभी नहीं होगी।

(259) क्योंकि ईंधन, अग्नि के सूक्ष्म अवयव धूम के साथ उड़ते हुए सकल लोक को भी स्पर्शते हैं, वे पुद्गल सकल लोक में जा सकते हैं। ऐसा माने सभी जगह सभी साधु की पूति होगी।

(260) ★ पूर्वपक्ष – यदि इनसे पूति नहीं होती तो सूत्र में बादर-सूक्ष्म पूति के दो भेद बताएँ, वे नहीं घटेंगे?

(261) उत्तर – हम उनसे सूक्ष्मपूति तो मानते ही हैं किंतु अकल्प्य नहीं मानते, इसलिए सूत्र सही है।

(262) कार्य दो प्रकार – साध्य, असाध्य। असाध्य कार्य साधने वाला क्लेश पाता है, इसी प्रकार सूक्ष्मपूति अशक्य परिहार है।

(263) ★ पूर्वपक्ष – आधाकर्मी परठने के बाद पात्र परकल्पत्रय करने द्वारा सूक्ष्मपूति का परिहार किया जा सकता है?

उत्तर – यह तो बादर पूति है, इस प्रकार बादर का परिहार होता है क्योंकि आधाकर्मी का अवयव शुद्धाहार में मिश्र होना बादर पूति है किंतु ईंधन, धूमादि सूक्ष्मपूति है।

(264) पूर्व कल्पत्रय किए बिना ही पात्र तापरने से बादर पूति नहीं होगी क्योंकि उसमें अंश तो मिश्र होता नहीं है, केवल गंध होती है।

उ. – गंध भी आधाकर्मी के अंश बिना नहीं होती क्योंकि द्रव्य बिना गुण

नहीं होते। अतः धोने के बाद भी गंध होने से वहाँ सूक्ष्म अंश तो होते ही हैं।
इस प्रकार सूक्ष्मपूति अशक्य परिहार है, सिद्धम्। गन्धादिपुद्गलानां
चरणप्रशंसापादनसामर्थ्ययोगात्।

(265) ★ इस बात को लौकिक रीत्या सिद्ध करते हैं - लोकेपि दूरादपि अशुचिगन्धादि-
-पुद्गलाः स्पृष्टा अपि न अशुचीकुर्वंति, न च विषाक्षयवा अपि दूरगताः सन्तः मारयन्ति।

(266) ★ शेष द्रव्यपूति - अकृतकल्प्य थाली में पहली-दूसरी-तीसरी बार बना आहार पूति,
चौथी बार बना पूति नहीं।

(267) ★ आधाकर्म आहार के छिलके से भी पूति होती है किंतु गंधादि पड़ते नहीं।

(268) ★ दातागृह और साधु पात्र का आश्रय कर कल्प्याकल्प्य विधि - जिस घर में
जिस दिन आधाकर्म बनाया, उसदिन और उसके बाद ३ दिन तक अर्थात्
Total ४ दिन तक उस घर की गोचरी अकल्प्य। साधु पात्र पूति होने पर
शुद्धकल्प्य किए बिना नहीं कल्पता।

(269) ★ आधाकर्म-पूति में अंतर - सर्व साधु के लिए किया = आधाकर्म, इसके अवयव
से मिश्र शुद्धाहार = पूति।

(270) ★ पूति जानने के उपाय - (i) साधु पूछे - तुम्हारे घर पर कोई संखड़ी या आधाकर्म थोड़े
दिन पहले किया था? (ii) श्राविका कहे - काल या परसो हमने स्वामिवात्सल्य रखा था
या संखड़ी में साधुनिमित्त बहुत सारा था। उक्तं पूतिद्वारं

(271) ★ ५. मिश्रजात

यावदर्थिक | पाखंडी | साधु
सभी याचक के लिए और हमारे लिए | केवल पाखंडी और हमारे लिए | केवल साधु और हमारे लिए

★ → मिश्रजात यदि एक-दूसरे को देते-देते हजार के लोगों में भी पड़ जाए तो भी अकल्प्य।
→ जिस पात्र में मिश्र ग्रहण किया, वह कल्प्यत्रय करने पर ही कल्प्य।

(गा.24) ★ भिक्षाजात का संभव – (i) दुर्भिक्ष में भिक्षाचर की अनुकंपा से (ii) तीर्थयात्रादि विशेष उत्सव में।

(224) ★ यावदर्थिक के परिज्ञा उपाय – (i) कोई देती हुई स्त्री को कहे कि यह सभी भिक्षाचरों के लिए बनाया है इसलिए इच्छानुसार दे (ii) कोई स्वामी कहे – इतने से कार्य नहीं होगा इसलिए और ज्यादा बना।

(273) ★ पाखंडी – साधु भिक्षा के परिज्ञा उपाय – कोई स्वामी कहे कि पाखंडी के लिए भी इतना सीधा बना, उसी समय दूसरा गृहनायक कहे कि साधु के लिए इतना अधिक बना।

(274) ★ 'सहस्रान्तरगतमपि न कल्पते' इति भाष्यति – कोई मनुष्य वेधक विष से मरा। उसका मांस जो खाता है, वह भी मरता है। इस प्रकार एक हजार तक मरते हैं। इस विष को सहस्रवेधक कहते हैं।

(275) इसप्रकार भिक्षाजात भी 1000 हाथ में से पिंड होने पर भी चारित्रात्मा का हनन करता है। इसलिए अकल्प्य।

(276) ★ प्रक्षालन विधि – भाजन खाली कर सूखे गोमय से उद्वर्तन करने के बाद तीन कल्प देना, फिर धूप में सुखाकर वह कल्प्य होता है। अन्यथा धृतिदोष संभव है। उक्तं भिक्षाद्वारं।

(277) 5. स्थापना → दो प्रकार – 1. स्वस्थान में – जिस ~~भाजन~~ चुल्हे पर वह पकाया है
2. परस्थान – अन्य जगह।

→ दोनों दो प्रकार – (a) अनन्तर – स्थापन करने के बाद विकार न हो जैसे घी।
(b) परंपर – जिसमें विकार हो जैसे दूध → दही → मक्खन → घी। इसलिए साधु निमित्त दूध की स्थापना कर यदि घी लेवे तो वह परंपर स्थापना।

→ एक बार में एक साधु एक घर में भिक्षा ग्रहण करता है और स्थापक आसपास की दो घर में उपयोग देता है। इसलिए तीन घर के अलावा घर में स्थापना दोष संभव है।

(गा-25) ★ स्वस्थान की व्याख्या – दो प्रकार (i) स्थानस्वस्थान = चूल्हा (ii) भाजन स्वस्थान = जिस भाजन में पकाया तह। चतुर्भंगी – (i) चूल्हे पर ✓ भाजन में ✓ (ii) ✓ ✗ (अन्य भाजन में स्थापित करना) (iii) ✗ ✓ (iv) ✗ ✗ ।

(278) ★ परस्थान = चूल्हे और उस भाजन के अलावा शेष सभी परस्थान। चतुर्भंगी – (i) स्वस्थान ✗ परस्वस्थान (ii) स्व पर (iii) पर स्व (iv) पर पर। कोई वस्तु का भाजन स्वस्थान हो किंतु चूल्हे पर न हो तो (ii) भंग। इत्यादि।

(279) ★ अनंतर-परंपर भेद – साधु के लिए जिसमें विकार संभव नहीं है, ऐसे द्रव्य की स्थापना अनंतर, (ii) जो द्रव्य परिवर्तित हो वह परंपर जैसे दूध दही गुड़ आदि।

(280) ★ विकारी-अविकारी द्रव्य → विकारी – इक्षु, क्षीर, कांबी आदि (कांबी खराब होना है) अविकारी – चीनी गुड़ आदि।

(281-2) ★ क्षीरादि परंपरा स्थापित – कोई साधु ने श्राविका से दूध मांगा, उसने कहा थोड़ी देर में दूंगी इतनी देर में साधु को अन्य जगह से मिल गया। श्राविका के पूछने पर साधु ने कहा कि प्राप्त हो गया। श्राविका ने उनके लिए स्थापित कर रखा। दूध परावर्तित हुआ। तब यदि वह उसे तक यदि वह ग्रहणैषणा कर ले तो साधु को कल्प्य किंतु घी बना हुआ तेजस्काय की विराधना से आधाकर्म होने के कारण अकल्प्य वह यदि 8 वर्ष न्यून पूर्वकोटि तक रखा रहे तो भी अकल्प्य।

(283) ★ इक्षुरस → कर्दम ... → शर्करा ⇒ परंपरा स्थापित का उदाहरण।

(284) ★ एक साधु का उपयोग घर में, संघाटक का दो घर में। इस प्रकार तीन घर सिवाय स्थापना संभव है। – उक्त स्थापना द्वार।

(285) ★ प्राभृतिका दो प्रकार – बादर, सूक्ष्म। दोनों दो प्रकार –
(i) अवष्वष्कण – स्व योग प्रवृत्ति को नियत काल मर्यादा से पूर्व करना
(ii) उत्ष्वष्कण – बाद में करना।

(i) बादर – विवाहादि बड़े प्रसंग संबंधी उत्सव या अवश्यकरण।

(ii) बसूक्ष्म – छोटे कार्यों संबंधी।

eg. कोपि श्रावक: चिन्तयेत् यदि मत्पुत्रस्य विवाह: ज्योतिर्विदा उपदिष्टे दिने भवेत् तर्हि यथाक्रमं आचार्यान् साधुसमुदाय: मोदकादि न उपकरिष्ये इत्थं चिन्तयित्वा सत्वरं परतो वा विवाहं करोति इति बादर प्राभृतिका।

(आ. 26-1) ★ सूक्ष्म प्राभृतिका – सूत कातती कोई स्त्री बालक को कहे कि मत रो, जब ऊठूँगी तब तुझे दूँगी, ऐसा सुनकर साधु वहाँ न जाए क्योंकि इसके निमित्त से हाथधोना आदि आरंभ होता है। अथवा साधु जाए और बालक कहे कि साधु आए हैं अब तो तू खड़ी होगी और हमें भी देगी ऐसा सुनकर भी अवसर्पण सूक्ष्म प्राभृतिका (नियत काल से पूर्व देना)

(286-1) ★ उत्सर्पण सूक्ष्म प्राभृतिका – कोई स्त्री कहे कि पुत्र! बार-बार मत बोल, मैं बाद में उठकर दूँगी अथवा कोई बालक साधु को ले जाए तो साधु पूछे कि तू क्यों मुझे ले जाता है? बालक सरलता से कह दे कि आप आओगे तो मुझे खाने को मिलेगा, ऐसा सुनकर साधु नहीं जाए।

(288) ★ अवश्यकरण बादर प्राभृतिका – पुत्रादि का विवाह ज्योतिर्विदा के उपदिष्ट दिन से पहले करना।

(289) ★ उत्सवकरण बादर – काल के बाद करना।

यदि कर्ता सरल हो तो सभी को कह देता है जनपरंपरा से सुनकर परिहरे।

" न हो तो यदि उकरे तो

यदि " तो उकरे न करे तो निपुणता से ढूँढकर छोड़े।

ढूँढने पर भी खबर न मिले तो कोई दोष नहीं।

(290) ★ वादर प्राभृतिका दो कारण – मंगलहेतु और पुण्यार्थ।

(291) ★ जानने पर भी परिहार न करने में दोष – बहुसाधु संसार में निष्फल भ्रमण करता है।

उक्तं प्राभृतिका द्वारम्।

(292-1) ☆ 1. प्रादुष्करण संज्ञा – कोई नीचद्वार वाले के घर को देखकर एक साधु प्र. उसमें श्राविका विनंति करने पर भी नहीं गया। थोड़ी देर में दूसरा साधु वहाँ दौरने गया। श्राविका ने पूछा कि इन्होंने भिक्षा नहीं ली, आपने क्यों ली? साधु ने कहा – मैं द्रव्यसाधु हूँ, वे भावसाधु थे। सच्चदोषने संश्राविका ने बहुत भाव से दौराया। थोड़ी देर बाद अन्यसाधु वहाँ गया, उसने वहीं पूछा। साधु बोला, वैद्य साधु प्राण करता है, हम नहीं करते। उसने सोचा कि ऐसे मुनि की भी यह निन्दा करता है। ऐसा सोचकर उसने विसर्जन किया। इस प्रकार भावित प्रादुष्करण भी हो सकता है।

(298-3) ★ प्रादुष्करण – दो प्रकार 1. प्रकटकरण – अंधेरे से पदार्थ को लेकर प्रकाश में लाना।
2. प्रकाशकरण – उसी Room में प्रकाश करना। प्रकाश करने के स्वरूप –
(i) खिड़की, द्वार खोलना (ii) दीवार में तोड़ना (iii) रत्न (iv) दीप (v) अग्नि (vi) विद्युत्।
→ प्रकटकरण और प्रकाशकरण वाला आहार अकल्प्य किंतु आत्मार्थ प्रकट या प्रकाश किया हो तो कल्प्य। अग्नि (विद्युत्) – दीपक वाला आहार आत्मार्थी कृत भी अकल्प्य, तेजस्काय दीप्ति संस्पर्शनात्।
→ प्रादुष्करण दोषित आहार परठवना। मुँह में हो तो वह भी निकालकर परठना। खरड़े हुए पात्र में अन्य आहार लेना कल्प्य। कल्पत्रेप आवश्यक नहीं।

(309) ★ चूल्हे का आश्रय कर प्रकटकरण – चूला 3 प्रकार –
(i) संचारिमा – जो घर में से बाहर ला सकते हैं। (ii) साधुनिमित्त पहले से ही बाहर किया हुआ लाना।
(अग्निकर्मा)

(iii) उसी दिन साधुनिमित्त बाहर किया गया चूल्हा। इन तीन चूल्हे पर रांधा हुआ आहार ग्रहण में २ दोष – उपकरण इति और प्रादुष्करण। यदि चुल्हे में अलग की हुई वस्तु दे तो एक प्रादुष्करण ही, यदि चूल्हा शुद्ध हो तो भी एक प्रादुष्करण ही।

(301) ★ परिज्ञानोपाय – (i) यदि कोई स्त्री कहे कि अंदर अँधारे में भिक्षा नहीं देते इसलिए बाहर किया हां) कोई देखने पर कहे दे तो ऐसी भिक्षा परिहरे।

→ इस प्रकार प्रकरण वाला आहार आत्मार्थीकृत कल्प्य।

(302) ★ आत्मार्थीकृत कैसे संभव है? – कोई ऐसा विचारे कि घर में मक्खी, चींटियां संचारादि बहुत है इसलिए हम हमारे लिए भी यहाँ बाहर ही पकाएँगे, एवं आत्मार्थीकृत संभव कल्प्य।

(303-4) ★ प्रकाशकरण – (i) कोई दिवाल में छेद करे (ii) द्वार बड़ा करे (iii) अन्य द्वार करे (iv) छत में छेद करे (v) रत्न स्थापे (vi) दीप या अग्नि करे। साधुनिमित्त हो तो अकल्प्य, आत्मार्थीकृत कल्प्य, दीप या अग्नि वाला आत्मार्थीकृत भी अकल्प्य तेजस्कायसंघ

(305) ★ प्रादुष्करण दुष्ट आहार की विधि– दोषित आहार धरठकर, अकृतकल्पत्रय पात्र में शुद्धाहार कल्प्य। उक्त प्रादुष्करणम्

(306) ★ ८ क्रीत द्वार – खरीदा हुआ आहार। २ प्रकार – (i) द्रव्य – द्रव्य-पैसे से क्रीत (ii) भाव–भाव से गुण दिखाकर क्रीत। दोनों के दो प्रकार – (i) आत्मक्रीत – साधु स्वयं खरीदे (ii) परक्रीत – कोई अन्य साधुनिमित्त खरीदे।

→ परद्रव्यक्रीत – परद्रव्य ३ प्रकार सचित्त, अचित्त, मिश्र। द्रव्य से दूसरे द्वारा साधुनिमित्त खरीदा गया।

(307) ★ सामान्य से ३ अन्य ३ भेद कहे।

(308) ★ आत्मद्रव्य क्रीत – (i) निर्मात्य – तीर्थंकर की प्रतिमा का प्रसाद वि. (ii) गंध – पखालादि

(iii) गुटिका- मुँह में रखकर रूप बदलनादि की गुटिका (iv) वर्णक = चंदन (v) पीत वस्त्रों के योग्य वस्त्रखंड आदि देकर पर व्यक्ति को आवर्जनकर भक्तादि ग्रहण करना।

→ इसमें दोष कहते हैं - (i) ग्लानता - निम्नत्यादि देने के बाद यदि वह ग्लान हुआ तो प्रवचन का उड्डाह। (ii) प्रगुण - यदि निरोगी हुआ तो अन्य जन भी साधु के पास माँगेंगे जिससे साधु अधिकरण प्रवृत्ति भी कर सकता है। पट दिखाकर लोगों को आवर्जित कर

(309) ★ परभाव क्रीत - गोकुल वि. में कोई संघ विशेष साधु निमित्त घी-दूध इकट्ठा कर साधु को निमंत्रण दे। इस प्रकार के परभाव क्रीत में दोष - क्रीत और अभ्याहृत। यदि लाकर एक जगह स्थापना करे तो स्थापना दोष। दृष्टांत

(310-11) ★ - शालिग्रामः × देवशर्मा संघः × स कदापि स्ववसतौ तिष्ठतां साधूनां अपरद्विष्टतां दृष्ट्वा भक्तिपरीतः बभूव × तेन निमंत्रणे कृते सति साधवः शय्यातरपिण्डः इति निषेधु × न स क्वचिद् गोकुले निजपटं उपदर्श्य लोकं आवर्जितवान् × लोकः तस्मै घृतदुग्धादि दातुं प्रावर्तिष्ट × स ब्रूते - यदाहं याचिष्ये तदा दातव्यं × साधवः यथाक्रमं तत्र जग्मुः × स्वं अज्ञापयता तेन घृतदुग्धादि एकत्र संमील्य भुक्तं × न निमन्त्रिताः साधवः छद्मस्थदृष्टिभावात् न ज्ञातवन्तः × शुद्धं इति गृह्णन्ति × न कश्चिद्दोष इति दृष्टांतः।

(312) ★ आत्म भावक्रीत - (i) धर्मकथा (ii) तप (iii) जाति (माता) (iv) कुल (पिता) (v) गण (vi) शिल्प (vii) कर्म बताकर अन्य को आवर्जित कर भिक्षा लेना।

यदा तु दुःखक्षयार्थं कर्मक्षयार्थं च धर्मकथादि यथायोगं करोति तदा स प्रवचनप्रभावकतया महानिर्जराभाग् भवति।

(313-4) ★ धर्मकथा द्वार- कोई पूछे कि जो प्रसिद्ध प्रवचनकार हैं, वह आप हो? तो वह कहे कि साधु तो धर्मकथा करते ही हैं अथवा मौन रह अन्यथा कहे कि बुद्ध तो क्या कहते हैं, सांख्यों को तो आता नहीं है, एकशौकरिक भी कुछ बोलते नहीं हैं। इस कहने से श्रावक समझ जाए कि यही प्रसिद्ध प्रवचनकार हैं और उसे प्रभूत अन्न दे।

(315) ★ इस प्रकार स्वयं की जात्यादि प्रकट कर जो आवर्जन करे, वह आत्मभावक्रीत।

उक्तं क्रीतद्वारं।

(316) ★ ७ प्रामित्य - २ प्रकार लौकिक, लोकोत्तर। लौकिक = साधुनिमित्त गृहस्थ द्वारा, लोकोत्तर = साधु में परस्पर।

(317-8-9) ★ भणीनी उदाहरण- देवराजः कुटुम्बी x तस्य भार्या सारिका x सम्मतादिपुत्राः x सम्मत्यादि पुत्र्यः x तस्मिन्नेव ग्रामे शिवदेवः श्रेष्ठी x तस्य भार्या शिवा x अन्यदा समुद्रघोषसूरयः समागच्छन् x तेषां पार्श्वे सम्मतः दीक्षां गृहीतवान् x स गीतार्थः समजनि x स स्वजनान् प्रतिबोधयितुं स्वग्रामे आगत्य पृष्टवान्- अस्य देवराजस्य कुटुम्बिनः सत्कः कोपि विद्यते? स प्राह- केवलं तस्य विधवा पुत्री सम्मती जीवति, अन्येतु सर्वे मृताः x स तस्या गृहे जगाम x ~~भक्त~~ तया च भ्रातरं दृष्ट्वा पक्तुं आरब्धं पक्वः आहारः x साधुः तां निवारितवान् x सा द्रविडत्वेन तैलं अपि अत्यल्पमात्रा शिवदेवस्य विपणेः तैलपात्रिकाद्वयं प्रतिदिनं द्विगुणवृद्धिरूपेण कलान्तरेण आनीय भ्रात्रे दत्तवती x भ्रात्रा शुद्धं इतिकृत्वा गृहीतं x तादृदिनं भ्रातुः धर्मं श्रुतवती ततः तैलं प्रवेशयितुं न शक्तवती x द्वितीयदिने भ्रातृविरहात् वियोगशोकाकीर्णमानसतया न शक्तवती x तृतीयदिने ऋणं जाती- -प्रभूतत्वात् न शक्नोति x ततः दिने दिने ऋणं अपरिमितप्रमाणं जातं x श्रेष्ठी तांबजाण- मम तैलं देहि वा मम दासी भव x सा तैलं दातुं अशक्नुवती दासत्वं प्रतिपेदे x व्यत्ययता कालेन पुनः स साधुः आगत्तवान् x तस्याश्च एवंविधां परिस्थितिं दृष्ट्वा स उवाच- मा रोदीः अहं त्वां मोचयिष्यामि x स शिवदेवगृहं जगाम x धर्मोपदेशं दत्तवान् x तैः अणुव्रतानि सम्यक्त्वं प्रतिपन्नानि x शिवदेवस्य ज्येष्ठः

पुनः च साध्वभगिनी च दीक्षां प्रतिपत्तुं उपतस्थे × श्रेष्ठिना द्वावपि अनुज्ञातौ।

(320) ★ लोकोत्तर प्रामित्य - दासत्वादयः दोषाः विशेषतरा ज्ञातव्या। उक्तं

अन्यदोषान् आह - लोकोत्तर प्रामित्य २ प्रकार - (i) कोई किसी के वस्त्र ग्रहण करता है कि

(321) ★ कुछ दिन बाद तुझे पुनः दूँगा (ii) कुछ दिन बाद तुझे ऐसा ही नया वस्त्र दूँगा।

→ प्रथम प्रकार में - (i) यदि वस्त्र मैला हो जाए, फट जाए (ii) चोरी हो जाए, घुम जाए तो कल्पह वि. दोष। → दूसरे प्रकार में उस वस्त्र से विशिष्टतर देने पर भी वह व्यक्ति कदुष्कसूचि हो तो कल्पह वि. दोष। लोकोत्तर प्रामित्य अकल्प्य।

(322) ★ अपवाद - वस्त्रादि दुर्लभ होने पर सीदाते साधु को अन्य साधु वस्त्रादि देने के लिए इच्छे तो सरलता से दे, शर्त लगाकर नहीं जैसे - वैयावच्च में जो मालसी हो तो शर्त लगाकर उससे काम करवाना कि। वस्त्र देने वाला गुरु को दे, फिर गुरु उसे दे जिससे कल्पह न हो।

उक्तं प्रामित्यद्वारं।

10. पशवर्तित - दो प्रकार - लौकिक, लोकोत्तर। दोनों के दो प्रकार -

(323) ★ 1. तद्द्रव्यविषयक - जो द्रव्य दो, वही लेना eg. कुथित घी देकर सुगंधि घी।

2. अन्यद्रव्यविषयक - अन्य द्रव्य लेना। eg. कोद्रव → शालि ओदन लेना।

(324-5-6) ★ लौकिकस्य उदाहरणं - वसन्तपुरः × नित्यः श्रेष्ठी × सुदर्शना भार्या × द्वौ पुत्रौ - क्षेमङ्करः देवदत्तश्च × लक्ष्मीः दुहिता × तिलकः श्रेष्ठी × सुन्दरी महेला × धनदत्तः पुत्रः बन्धुमती च दुहिता × क्षेमङ्करः समितसूरीणां पार्श्वे दीक्षां गृहीतवान् × देवदत्तेन बन्धुमती धनदत्तेन च लक्ष्मीः परिणीता × धनदत्तः दैवात् दरिद्रातिस्म ततः स कोद्रवौदनं भुङ्क्ते × देवदत्तः शाल्योदनं भुङ्क्ते × एकदा क्षेमङ्करः साधुः तत्राजगाम × स चिन्तयामास - यदि देवदत्तस्य गृहे गमिष्यामि ततः मे भगिनी दारिद्र्येण परिभवं संस्थते अतः स तस्या गृहे प्रविवेश × लक्ष्म्या चिन्तितं - कथं अस्मै कोद्रवकूरः दीयते? अतः अहं बन्धुमत्याः परावर्तनेन शाल्योदनं आनीय दयामि × तथैव कृतं × अत्रान्तरे देवदत्तः भोजनार्थं आगतः, कोद्रवकूरं दृष्ट्वा तेन चिन्तितं - कृपणतया इयं कोद्रवौदनं अपाचीत् अतः तां ताडयितुं आरब्धे × ताड्यमाना सा अवोचत् - स्वैरं वृत्तान्तं ×

धनदत्तोऽपि दोषमङ्करायं दीयमानं उद्धरितं शालिं दृष्ट्वा पप्रच्छ x तया कथितं वृत्तान्तं x सोऽपि अताडयत् परगृहाद् आनयनेन मम भाक्तिन्यं आपादितं इति x साधुना जनपरम्परया वृत्तान्तः शुश्रुवे x तेन सर्वाणि प्रतिबोधितानि।

(327) ★ लोकोत्तर ॥ परावर्तनि = वस्त्रादि परिवर्तनं साधुः साधुना सह।

दोष - (i) मेरा प्राप्त प्रमाण था, यह तो न्यून या अधिक है (ii) जीर्णप्राय (iii) ककेशस्पर्श (iv) अरयुक्त (v) फटा हुआ (vi) मलिन (vii) शीत रक्षणाक्षम (viii) कलर अच्छा नहीं है इस प्रकार में ठगाया' ऐसा सोचे अथवा अन्य साधु द्वारा प्रेरित करने पर ऐसा समझे।

यदि गुरु को पूरी बात बताकर परावर्तन करे तो कल्प्य अन्यथा कल्प्य हो सकता है।

(328) ★ उक्तं परिवर्तितद्वारं।

(329) ★ ॥. अभ्याहृत, 2 प्रकार - 1. आचीर्ण = कल्प्य 2. अनाचीर्ण = अकल्प्य।

अनाचीर्ण - (i) निशीथ = अर्द्धरात्रि, जो प्रच्छन्न हो साधु को खबर न हो।
(ii) नोनिशीथ = जो साधु को खबर हो।

(330) ★ नोनिशीथ - 2 प्रकार (i) स्वग्राम = जिसमें साधु हो (ii) परग्राम = जिसमें उसके अलावा।

परग्राम 2 प्रकार - (i) स्वदेश = जिस देश में साधु हो (ii) परदेश।

(331-2) ★ द्वितीयमपि द्विधा - (a) जलपथेन < नाव, तुंबडे आदि / पैर से (अनुपानी में) (b) स्थलपथेन < घोड़े से, ऊंट आदि, दोषान् प्राह - (a) जल के संघट्ट विराधना - अप्कायादि।
→ आत्म " - डूबना, जलचर जीवों से भक्षणादि।
(b) स्थल → संघट्ट " - पृथ्वीकायादि।
→ आत्म " - कीड़े, जंगली पशु, चोर आदि से।
उक्तं परग्राम नोनिशीथ अभ्याहृतं अनाचीर्णं।

(333-4) ★ स्वग्राम नोनिशीथ अभ्याहृत - 2 प्रकार - (i) गृहान्तर = तीन घर में उपयोग संभव होने से, तीन घर से लाया हुआ आचीर्ण (तीन घर में से लाया हुआ) (ii) नोगृहान्तर = अनेक प्रकार का, तीन घर सिवाय बड़ा, गली आदि विषयक, यदि वे उपाश्रय में लाए तो अनाचीर्ण।

(335) ★ स्वग्राम नोनिशीथ अभ्याहृत का संभव - साधु घर में गया हो तब (i) वह घर शून्य हो (ii) खाना पका न हो (iii) साधु को देने योग्य भोजन न हो, सामान्य भोजन हो (iv) कोई महमान आया हो (v) श्राविका सोई हो आदि कारणों से यदि बाद में उपाश्रय में भिक्षा लाए और कारण कहे तो वह स्वग्राम नोनिशीथ अनाचीर्ण। उक्तं स्वग्राम नोनिशीथ अभ्याहृत।

(336) ★ निशीथ अभ्याहृत- साधु के विलकुल्य न जानते हुए जो अभ्याहृत वह। स्व॰-पर ग्राम भेद नोनिशीथ जैसे ही जानना।

(337-40) ★ परग्राम निशीथ अभ्याहृत दृष्टांत - क्वचिद् ग्रामे धनावहादि: श्रावका:, धनवतीप्रमुखा श्राविका: × एकदा तेषां अवसरे विवाह: समजनि × प्रचुरं मोदकादि उद्वरितं × तैः अचिन्तितं एतत् साधुभ्यो दीयतां पुण्यार्थं × केचित् साधव: दूरे केचित् पुन: प्रत्यासन्ना: तिष्ठन्ति किन्तु अन्तरात्रे नदी विद्यते अत: ते नागच्छन्ति × आगता अपि आधाकर्ममाशङ्क्य न गृह्णन्ति, अत: ते प्रच्छन्नतया साधूनां ग्रामे व्रजन्ति × साधूनां 'अशुद्धं इति शङ्का न भवेत्' इतिकृत्वा यदा साधव: उच्चारादिअर्थं गच्छन्त: प्रेक्षन्ते तदा द्विजादिभ्योपि ददते × तैः साधव: निमन्त्रिता: × साधवोपि द्विजादिभ्यो दीयमानं 'शुद्धं' इति गृह्णन्ति × पश्चात् वन्दनार्थं ते श्रावका उपाश्रये समाजग्मु: × वार्तायां ज्ञातं यत् एतत् अभ्याहृतं।

(341-2) ★ स्वग्राम निशीथ अभ्याहृत- कोई स्त्री उपाश्रय में कहे कि मुझे यह भक्त इस घर से या सेवाड़ी में से मिला है इसलिए शुद्ध है, आप लाभ दो अथवा मैं मेरे घर से दूसरे को देने के लिए लाई थी किंतु उसने नहीं लिया, उसने झगड़ा किया आदि इसलिए आप लाभ दो।

(343) ★ निशीथ-नोनिशीथ स्वग्राम-परग्राम अभ्याहृत अनाचीर्ण है।

(344) ★ आचीर्ण - 2 प्रकार (i) देश में (ii) देशदेश में।

(i) देश- 100 हाथ प्रमाण क्षेत्र (ii) देशदेश - 100 हाथ के अंदर।

3 घर में उपयोग हो और 100 हाथ प्रमाण क्षेत्र या अंदर हो तो वह कल्प्य।

(345) ★ कोई घर में पंक्ति में लोग भोजन करते हो, उन्हें परोसने वाला पंक्ति के opposite side हो, संघट्टे के कारण वहाँ जाना शक्य न हो तो 100 हाथ के अंदर हो तो कल्प्य। etc.

★ आचीर्ण - 3 प्रकार - (i) उत्कृष्ट = 100 हाथ दूर से लाया हुआ (ii) जघन्य = एक हाथ से दूसरे हाथ में लेना (iii) मध्यम दोनों के मध्य का। उक्तं अभ्याहृतद्वारं।

(347) ★ 12. **उद्भिन्न** - 2 प्रकार (i) पिहितोद्भिन्न = ढंकी हुई वस्तु खोलना e.g. मिट्टी आदि ढँकी हुई तैलादि की can (ii) कपाटोद्भिन्न = बंद दरवाजा/कवाट खोलना।

पिहितोद्भिन्न → पिधान 2 प्रकार (a) प्रासुक = सचित्त अचित्त e.g. छाणादि से ढाँकना। (i) दर्दरकः = मुखबंधन वस्त्रखंड

(b) अप्रासुक = सचित्त पृथ्वी आदि से।

(348) ★ दोनों भेदों में दोष - (i) पिहित में - षट्काय विराधना, पुत्रादि को देना या क्रय-विक्रय, (ii) कपाट में - सविशेष षट्काय विराधना, यंत्र-चाबी आदि से खोलने से। अधिकरण।

(349-51) ★ षट्काय विराधना → (उखाड़ने में) सचित्त पृथ्वी का पाषाणखंड, लेष्टु वि. यदि चिरकाल से बंद हो तो पानी के साथ मिलकर पृथ्वी सचित्त होती है किंतु पानी अचित्त हो जाता है, यदि थोड़ी देर पहले ही बंद किया हो तो पानी भी सचित्त। पृथ्वी, अप् और उनके आश्रित त्रसादि की विराधना।

(वापस बंद करने में) - फिर सचित्त पृथ्वी और पानी का लेप करे तो पृथ्वी, अप् विराधना। पृथ्वी के साथ मूँगादि, कीड़ी वि. की भी विराधना। कोई निशानी बनाने के लिए लाख तपाकर लगाए तो अग्निकायविराधना। जहाँ अग्नि हो वहाँ वायु भी होती है, वायु विराधना।

(352) ★ दान, क्रय-विक्रय - साधु निमित्त कुत्तु पादि का मुख खोलने पर अन्य याचक को, पुत्रादि को दे अथवा क्रय-विक्रय करे तो प्रवृत्ति दोष।

(353) ★ अधिकरण - कुत्तु पादि मुख खोलने पर चूहे वि. जो भी उसमें गिरे-मरे उन सबका दोष साधु को लगता है। अधिकरण = पापप्रवृत्ति।

(354) ★ कपाट में इन्हीं दोषों को समझाते हैं - कवंद कपाट के आगे पानी से भरा हुआ कोई बर्तन रखा हो तो खोलने पर पानी ढुलता है, वह पानी चूल्हे में जाए तो अग्नि विराधना, पृथ्वी, अप् विराधना। अग्नि के साथ वायु विराधना, पानी चूहे-कीड़ी के घर में घुस जाए तो त्रस विराधना, दान-क्रय-विक्रय-अधिकरण पूर्ववत्।

(355) ★ सविशेष पद समझाते हैं - (i) कवाट हिलाने से चिपकली, कीटक, चूहे वि. की विराधना (गृहगोधिका)

PAGE : 57
DATE : / /

(ii) कबाट की पीछे कुंथवे, कीड़ी वि. मरने हैं (iii) कबाट में कोई घातक वि. घुस जाए तो दबाने से उसे निकालने में सिर फुटना वि. दोष।

(356) ★ अपवाद कहते हैं – (i) कबाट यदि खोलते हुए आवाज न करे, यदि रोज खुलता हो, तो [छिपकली वि. की संभावना न होने से] (ii) यदि सिर्फ कपड़े से ही पिहित हो, रोज खुलता हो, पृथ्वी आदि का लेप न हो तो ऐसा उद्भिन्न, स्थविरकल्पी साधु को कल्प्य।

उक्तं उद्भिन्नद्वारं।

(357-8) 13★ मालापहृत – 2 प्रकार (i) जघन्य = जमीन पर सिर्फ पैर का अग्र भाग अड़े, एड़ी ऊँची रहे इस प्रकार ऊपर रहे छिके पर से दृष्टि से अगोचर ऊंचे में से दे, वह।

(ii) उत्कृष्ट = इससे विपरीत बड़ी निसरणी वि. लगाकर ऊपर से उतारे।

(359-60) ★ जघन्य मालापहृत में वंदक भिक्षु दृष्टांत – जयन्तपुरं x यक्षदिन्नः गृहपतिः x वसुमती x धर्मरुचिः साधुः एकदा भिक्षार्थं तेषां गृहे आगतवान् x यक्षदिन्नः वसुमतीं उच्चसिक्यकमध्ये स्थितान् मोदकान् दातुं बभाण x मालापहृतं जानन् साधुः गृहाद् निर्जगाम x तत्कालं कोपि भिक्षुः तस्मिन्नेव गृहे आजगाम x ताभ्यां पृष्टः सन् भिक्षुः प्रवचनमात्सर्याद् यद्वा तद्वा बभाण x ततः तानेव मोदकान् दातुं वसुमती उत्थिता x घटे कथमपि भुजङ्गमः समागतः तिष्ठति x वसुमती पादाग्रतलप्रेरणं करं प्रक्षिपति तावत् स भुजङ्गः तं करं पुत्यगृह्णात् x सा पूत्कारं कुर्वती भूमौ पपात x मन्त्रौषधा-दिप्रभावतः सा नीरुग् बभूव x धर्मरुचिः मुनिः पुनः समाजगाम x ततः यक्षदिन्नेन पृष्टः – कथं भवान् दृष्टसर्पः आवाभ्यां नाकथयत् x स उवाच – नाहं अद्राक्षं किंतु अयं भिक्षूणां धर्मः निरपायः भगवता कथितः x एवं धर्मं उपादिशत् x गुरुसमीपे दम्पती दीक्षां प्रपेदाते।

(361) ★ जघन्य मालापहृत में दोष – मंच, पीठ, गेहूं आदि पीसने की चक्की आदि पर चढ़कर या एड़ी ऊँची करके देते हुए यदि देने वाली स्त्री गिरे तो (i) स्त्रीवध और पृथ्वीकायादि वध।

साधु को देती हुई मैं पहले भी गिर गई थी, इसलिए अब नहीं दूंगी' अन्यद्रव्य या तद्द्रव्य व्यवच्छेद (iii) पत्नी के गिरने से गृहपति को साधु पर द्वेष हो, वह साधु को ताड़नादि करे। प्रवचन उड्डाह - साधु के देते हुए स्त्री गिर गई (iv) लोक में अज्ञानतादि - ये साधु अनर्थ को जानते नहीं हैं, मूर्ख हैं आदि।

(362) ★ उत्कृष्ट मात्रापहृत दृष्टांत - जयन्ती पुरी × सुरदत्तः गृहपतिः × वसुन्धरा × गुणचन्द्रनामा साधुः गृहे प्राविशत् × सुरदत्तः वसुन्धरां अभिहितवान् - मात्रादानीय मोदकान् देहि × सा च अन्तर्वत्नी × साधुः अकल्प्यं इति तां निवार्य निर्गच्छति × कोपि कापित्थः भिक्षार्थं प्राविशत् × सुरदत्तेन पृष्टः सन् स किमपि असम्बद्धं अभाषिष्ट × वसुन्धरा मोदकान् प्रदातुं निःश्रेणिं आरोहन्ती पादस्खलनतः न्यपतत् × अधश्च व्रीहिदलनयन्त्रं आसीत् × तत्कीलकः तस्याः गर्भं पाट्यामास × निर्गतः परिस्फुरन् गर्भः लोकानां पश्यतां मृतवान् वसुन्धरा च × कापित्थस्य निन्दा उच्चलितः × अन्यदा स एव साधु गृहे प्राविशत् × तदा च पृष्टः सुरदत्तेन - भवान् पत्नी-मृत्युं पश्यन्नपि कथं न कथितवान् × ततः साधुः अकथयत् - अहं न अद्राक्षं किंतु अस्मत्सर्वज्ञ मात्रापहृतां भिक्षां अकल्प्यं इति अकथयत् अतः मया अहं निवारितं × स गृहपतिः दीक्षां अग्रहीत्

↳ उत्कृष्ट मात्रापहृत में भी जघन्य जैसे ही दोष जानना (गा. 361)

(363) ★ मात्रापहृत - 3 प्रकार (i) ऊर्ध्व = ऊपर रहे छिके वि. (ii) अधः - नीचे रहे वि. (iii) तिर्यक् - कुंभ वि. जो बड़े हो, जिसमें नीचे झुककर कुछ लेना पड़े।

(364) ★ अपवाद - (i) जो Permanent सीढ़ी हो, उससे चढ़कर जो दे, वह कल्प्य (ii) अथवा साधु नीचे खड़े रहे, स्वयोग से निःश्रेणी से ऊपर चढ़ी हुई स्त्री ऊपर से ही दे दे, तब यदि पात्र साधु की दृष्टि में रहे तो कल्प्य

(365) ★ यदि दृष्टि के ऊपर पात्र रखे तो उच्चोत्क्षिप्त, पैर के भी नीचे पात्र रखे तो अनुच्चोत्क्षिप्त दोनों अकल्प्य) उक्तं मात्रापहृतं।

PAGE : 53
DATE : / /

(366)★ 14. **आच्छेद्य** - 3 प्रकार (i) प्रभु विषयक (ii) स्वामी विषयक (iii) स्तेन विषयक तीनों अकल्प्य।

(द्वार) (367)★ (i) प्रभु विषयक - प्रभु है कर्ता जिसमें, - ① गोपाल, ② नौकर, ③ पुत्र, पुत्री, पत्नी वि. दोष - (i) अप्रीति (ii) कलह वि. [प्रभु = स्वगृह का नायक]

(368-9)★ गोपालक दृष्टांत - वसन्तपुरं × जिनदासः श्रावकः × रुक्मिणी × गृहे वत्सराजः गोपः × स प्रतिप्रभातं दिनं सर्वगोमहिषीणां दुग्धं आदत्ते × एकदा साधुः भिक्षायै आगच्छत् तद्दिने गोपालस्य वारकः × तेन सर्वा अपि गोमहिष्य दुग्धा × जिनदासः साधुदानाय गोपालात् याचित्वा ददौ × गोपालः साधौ द्वेषं ययौ × तस्य गृहे भार्या पृष्टवती कथं भाजनं न्यूनं ? × तेन कथिता सापि साधौ आक्रोष्टुं प्रावर्तत × गोपः साधौ जातमहाकोपः साधुं मारितुं चचाल × साधुः लकुटं उत्पाट्य धावन्तं तं दृष्ट्वा विशेषतः प्रसन्नवदनः भूत्वा जगाद - भो गोप! गृहाण तव दुग्धं × स उवाच - यत् अद्य अहं त्वां मुञ्चामि परंतु न गृह्णता त्वया आच्छेद्यं।

(370)★ दोष - कभी प्रभु - गोप को भी कलह वि. हो सकता है।

(371)★ स्वामी विषयक - स्वामी = ग्रामादि नायक। अकल्प्य।

(372)★ (i) संखडी = कलह (ii) असंखडी = कलह बिना कोई स्वामि बलपूर्वक लेकर दे वह अकल्प्य।

(373)★ दोष - (i) नौकर वि. को साधु पर अप्रीति (ii) अदत्तादान दोष क्योंकि वस्तु के मालिक की अनुज्ञा नहीं है (iii) नौकर वि. साधु को वस्ती से निकाल दे, पड़ातड़ा बोले (iv) द्रव्य व्यवच्छेद करे।

(374-6) ~~अनंत~~★ चले साधु कोई दरिद्र सार्थ के साथ जा रहे हो और चोर चोरी करे, फिर साधु को भक्ति भाव से लौटाये, वह स्तेनाच्छेद्य। अकल्प्य।

दोष-(i) सार्थ से निकाल दे (ii) द्रव्य व्यवच्छेद हि.

→ साधु-चोर समझकर जिनका वह द्रव्य हो उन्हें वापस दे यदि वह अनुज्ञा दे तो ही साधु वापरे। उक्तं आच्छेद्य द्वारम्।

(377) ★15. **अनिसृष्ट** = अननुज्ञातं, अकल्प्यं।

→ अनेकप्रकार - लघु लघु विषयक, भोजन, यन्त्र, संखाड़ि, दुग्ध, दुकान, घर विषयक हि.

→ सामान्य से 2 प्रकार - (i) साधारण अनिसृष्ट (ii) भोजन अनिसृष्ट।

(i) साधारण अनिसृष्ट का उदाहरण - रत्नपुर × माणिभद्रादि द्वात्रिंशद् मित्राः × ते (378-81) ★ उद्यापनार्थं मोदकान् कारितवन्तः × एकः मोदकरक्षकः मुक्तः शेषास्तु नद्यां स्नातुं गताः × कोपि लोलुपसाधुः तत्र गत्वा मोदकान् याचितवान् × रक्षकेन उक्तं - नाहं सर्वेषां मोदकानां स्वामी अतः कथं यच्छामि? साधुना स उक्तः - त्वं मूढोऽसि, यदि त्वं मह्यं न ददासि तथापि तव तु एकः एव मोदकः, अतः मद्दानात् अल्पव्ययं बहु आयं, अथ देहि मम सर्वान् × तेन दत्ताः × माणिभद्रादयः नद्याः निर्गच्छन्तः साधुं अपृच्छन् - किमत्र लब्धं? साधुः अचिन्तयत् यदि अहं सत्यं अवदामि तर्हि ते ग्रहीष्यन्ति अतः 'न किमपि लब्धं' अवोचत् × भाराक्रान्तं दृष्ट्वा ते कथयामासुः - साधो पात्रं दर्शय × सः न दर्शयति × बलात् अवलोकितं × दृष्ट्वा च मोदकाः × रक्षकः पृष्टः सन् वेपमानः प्रोक्तवान् - न मया दत्ताः मोदकाः × अतः 'चौरस्त्वं' इति ताड्यन्ति, स साधुश्च गृहस्थीकृतः × नीतः राजकुले × साधुः तज्ज्ञया धर्माधिकरणिकैः क्वयः वक्तुं न शक्तवान् × देशात् बहिष्कृतः।

(382) ★ शेषद्वयाणि - एवमेव अन्यत् अपि अनिसृष्टं प्रतिकुष्टं।

(383) ★ (ii) भोजन अनिसृष्ट - 2 प्रकार (a) स्वामि का (b) हाथी का।

(384-5) ★ स्वामि - 2 प्रकार (a) (i) छिन्न = सभी का भोजन अत्यंग - अत्यंग भाजन में रखा हो

(ii) अच्छिन्न = सभी का भोजन एक ही भाजन में हो। ~~छिन्न अच्छिन्न~~ ~~स्वस्व खुद के स्वामि द्वारा~~ अथवा स्वामि की अनुज्ञा से अन्य दे तो स्वामि देखने या न देखने पर भी कल्प्य।

→ छिन्न - यदि स्वयं स्वामि दे

→ अच्छिन्न - यदि ~~सभी~~ सभी स्वामि अनुज्ञा दे तो कल्प्य।

(386) ★ हाथी - हाथी का भोजन महावत द्वारा अनुज्ञात किंतु राजा और हाथी द्वारा अननुज्ञात अकल्प्य। महावत का खुद का भोजन हाथी के नहीं देखने पर कल्प्य।

(387) ★ दोष - हाथी का भोजन राजा का है इसलिए राजा द्वारा अननुज्ञात अकल्प्य।

हाथी → (i) वेश उद्घातन वि. दोष (ii) महावत को राजा नौकरी से निकाले वि. (iii) अदत्तादान

महावत का → (iv) हाथी कभी उपाश्रय वि. तोड़े, साधु को मारे वि.। उक्तं अनिसृष्ट द्वारम्।

(388) ★16. **अध्यवपूरक** - उपकार (i) यावदर्थिक (ii) स्वगृहपाखंडिमिश्र (iii) साधुमिश्र

(389) ★ मिश्रजात - अध्यवपूरक में भेद - मिश्रजात में पहले से ही चावल वि. अधिक लिए जाते हैं किन्तु अध्यवपूरक में पहले स्वयं के लिए ही होता है कि, बाद में पकते हुए भोजन अधिक पूरा जाता है।

(390) ★ कल्प्याकल्प्य विधि - (i) यावदर्थिक में शुद्ध भक्त में से जितनी मात्रा अध्यवपूरक में डाली हो, उतनी मात्रा निकाल लेने पर कल्प्य (ii) बाकी दो में भावपूर्ति होने से अकल्प्य।

(391) ★ → यावदर्थिक में यदि थाली में ही अलग किया हो तो भी अकल्प्य, यदि थाली से अलग निकाला हो तो ही कल्प्य। उक्तं अध्यवपूरकद्वारम्।

(392) ★ **विशोधि - अविशोधि कोटी** 1. विशोधि कोटी = जिस दोष से स्पृष्ट भोजन उतनी मात्रा में दूर करने पर शेष भोजन कल्प्य। 2. अविशोधि = दोष स्पृष्ट भोजन दूर करने पर भी पूति दोष के कारण अकल्प्य।

(393) ★ अविशोधिकोटी - 1. आधाकर्म 2. विभाग औद्देशिक के अन्त्य 3 भेद 3. पूति 4. पाखंडि-साधु मिश्रजात 5. बादर प्राभृतिका 6. पाखंडि-साधु मिश्र अध्यवपूरक

(394 भा. 31-9) ★ अविशोधि कोटी के अवयव से स्पृष्ट शुद्ध भक्त जिस दोष से दुष्ट होता है, वह दोष कहते हैं - अवयव भले ही लेप वाला हो (चु.-तक) अथवा अलेप हो (चु.-चने), उससे स्पृष्ट शुद्ध भक्त पात्र से परठने पर भी कल्पत्रय करने के बाद ही कल्प्य पात्र अन्यथा पात्र में पूति दोष।

→ यदि साधु के निमित्त ओदन बनाए तो उसके संबंधी ओसामण-चावल का पानी वि. भी आधाकर्म होंगे, शुद्ध नहीं।

(395) ★ विशोधि कोटी - 1. शेष भेद औद्देशिक 2. उपकरण पूति 3. यावदर्थिक मिश्र 4. स्थापना 5. सूक्ष्म प्राभृतिका 6. प्रादुष्करण 7. क्रीत 8. प्रामित्य 9. परिवर्तित 10. अभ्याहृत 11. उद्भिन्न 12. मालापहृत 13. आच्छेद्य 14. अनिसृष्ट 15. यावदर्थिक अध्यवपूरक।

→ इन दोष से दुष्ट भक्त परठने पर अन्य भक्त शुद्ध, पात्र भी शुद्ध।

विशोधि कोटी से दुष्ट आहार ग्रहण करने पर विधि (मात्रक पुरा पात्रा)

→ यदि इन दोष से दुष्ट आहार के बिना निर्वाह शक्य हो, तो पूरा परठना।

→ यदि निर्वाह शक्य न हो तो दोष दुष्ट आहार मात्र परठना।

→ दुष्टाहार शुद्ध आहार से अत्यंत करना शक्य न हो (eg. पक्वान्न, समानवर्णवाली वस्तुएँ, चने) तो विवेक करना।

(396) ★ विवेक - 4 प्रकार (i) द्रव्य = जो द्रव्य परठे वह (ii) क्षेत्र = जिस क्षेत्र में परठे (iii) काल = दुष्ट आहार ज्ञात होने पर जल्दी-से-जल्दी परठे, यदि जल्दी परठना अशक्य हो तो त्यागबुद्धि से अलग कर दे, अन्यथा भावतः तत्परिग्रहात्संयमहानिप्रसक्तेः

(iv) भाव = राग-द्वेष बिना परठे

(397-8-9) ★ → निर्वाह न होने पर दुष्काहार मात्र परठने की विधि → यहाँ 2 पक्ष है - 1. दुष्ट आहार शुष्क या आर्द्र हो 2. जिस शुद्धाहार में दुष्टाहार पड़े वह शुष्क या आर्द्र हो.

→ चतुर्भङ्गी - शुष्के शुष्कं, शुष्के आर्द्रं, आर्द्रे शुष्कं, आर्द्रे आर्द्रं।

→ प्रथम चतुर्थ भांगे में दुष्ट - शुद्धाहार समान है।

→ 1. शुष्के शुष्कं eg. चने में चने गिरे। आसानी से छोड़ना शक्य है।

2. शुष्के आर्द्रं eg. तीमन में चने गिरे। कांजि वि. द्रव थोड़ा और मिलाकर, पात्र झुकाकर पूरा पदार्थ निकाल कर परठे।

3. आर्द्रे शुष्कं eg. तीमन में चने गिरे। पात्र में हाथ डालकर जितने ज्यादा सूखी चीज़ अंदर से निकाल सके, उतनी निकाल कर परठे।

4. आर्द्रे आर्द्रं eg. छास में छास गिरे। वह द्रव्य अलग करना अशक्य होने से कल्प्य।

(400-1) → निर्वाह होने पर पात्र स्थित सभी भोजन परठे, निर्वाह न होने पर ऊपर बताये विधि।

(402) ★ प्रत्य प्रकार से कोटी कहते है - नौ कोटी - (1-3) स्वयं हनन, अन्येन घातन, हन्यमानस्य अनुमोदन (4-6) स्वयं पचन, अन्येन पाचन, पच्यमानस्य अनुमोदन (7-9) स्वयं क्रयण, अन्येन क्रापण, क्रीयमाणस्य अनुमोदन। प्रथम 1-6 अविशोधि, 7-9 विशोधि

कोटी 9

राग-द्वेष × 2 = 18

मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि अविरत, विरत सम्यग्दृष्टि × 3 = 27

10 धर्म परिपालनार्थं × 10 = 90

दर्शन-ज्ञान-चारित्र निमित्तं × 3 = 27

→ कोई विचारे कि वन में रहकर मैं फल खाकर क्षान्ति वि. 10 धर्म का पालन करूँगा इस प्रकार 10 धर्म परिपालनार्थं की संभावना कही।

→ कोई विचारे कि मैं वन में फल खाकर बहुत शास्त्र पढ़ूँगा। इस प्रकार अन्येन घातन विभेद और दर्शन - चारित्र भी समझना।

(403) ★ उद्गम दोष - गृहस्थ द्वारा, उत्पादना दोष साधु द्वारा किए जाते हैं।

(उद्गम प्रकार)

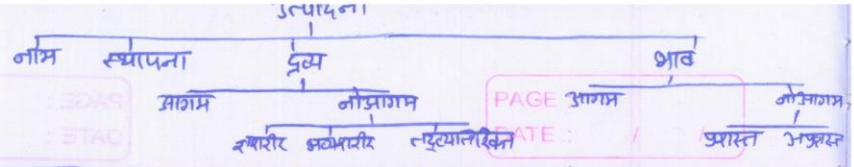

(५०५) ★ **उत्पादना** ५ प्रकार - नामस्थापना और द्रव्य में नोआगम से भव्य शरीर तक समझ लेना। ज्ञशरीरभव्य शरीर व्यतिरिक्त द्रव्योत्पादना ३ प्रकार - सचित्त, अचित्त मिश्र। भावोत्पादना २ प्रकार - आगम (उत्पादना शब्दार्थज्ञ और उपयुक्त), नोआगम - २ प्रकार प्रशस्त, अप्रशस्त। अप्रशस्त - १६ दोष।

(५०५) ★ सचित्त द्रव्योत्पादना - द्विपद में कोई स्वयं की पत्नी से पुत्र न होने पर देवता की आराधना से पुत्र उत्पन्न करे अथवा चतुष्पद में कोई स्वयं की घोड़ी के साथ अन्य के घोड़े का आलिंगन देने द्वारा संयोग कराकर घोड़ा उत्पन्न करे वि.।

(५०६) ★ अचित्त द्रव्योत्पादना - सोना वि. धातु से यथेष्ट आभूषण वि. बनाना।

मिश्र " - दास वि. को अचित्त वेतन देने द्वारा स्वयं का करना।

(५०७) ★ भावोत्पादना

(५०८-९) ★ १६ दोष - १. धात्री - बालक का पालन करना वि. 2. दूती 3. निमित्त ४. आजीविका 5. वनीपक 6. चिकित्सा 7-10 क्रोध प्रान माया लोभ 11. पूर्वसंस्तव (माता वि. कल्पना से परिचय) 12. पश्चात्संस्तव (सासु वि. कल्पना से परिचय) 13. विद्या/मंत्र 14. चूर्ण 15. योग (आकाशगमन वि. फलवाले द्रव्यों का समूह) 16. मूलकर्म (वशीकरण)

→ धात्रीत्व करने या कराने द्वारा जो पिंड ग्रहण करे वह धात्रीपिंड इत्यादि व्युत्पत्ति।

(५१०) ★ 2. **धात्री** धात्री - ५ प्रकार 1. स्तन्य पीलाने वाली 2. मज्जन 3. मण्डन ४. क्रीडन (क्षीरधात्री) 5. अंक। सभी के २ भेद - (i) स्वयं करे (ii) दूसरे से कराए। eg. जो स्वयं बालक को स्तनपान कराए वह स्वयंकरण क्षीरधात्री, जो अन्य से पिलाए वह कारण क्षीरधात्री।

(५११) ★ धात्री की व्युत्पत्ति - धारयति बालकं, वा धीयते प्रियते धयन्ति इनया, वा धयन्ति बालका: तां।

(५१२-१३) ★ साधु क्षीरधात्रीत्व कैसे करता है - घरें प्रविष्ट साधु सोते हुए बालक को देखकर बोले

(i) मुझे जल्दी भिक्षा देकर इसे स्तनपान करा (ii) पहले स्तनपान करा फिर मुझे देना (iii) मुझे भिक्षा अभी खप नहीं है, तू बालक को स्तनपान कर, मैं बाद में आऊँगा, (iv) अन्य प्रमाणित बालक मतिमान्, अरोगी, दीर्घायु होता है, और पुत्र दर्शन भी लोक में दुर्लभ है इसलिए पहले स्तन पान करा (v) तू स्तनपान न कराए तो मैं इसे दूध दूँगा (vi) मैं अन्य द्वारा स्तनपान कराऊँगा वि.। स्वयं करण, कारण बताया।

(414) ★ दोष-(i) यदि माता भद्र हो तो अध्याकर्म वि.दोष करेगी (ii) प्रान्त हो तो द्वेष करेगी (iii) माता के अथवा साधु प्रेरणा से अन्य द्वारा स्तनपान करने के बाद दैवात् बालक रोगी हो तो उड्डाह (iv) साधु बहुत चालु है, इस प्रकार निंदा (v) माता के पति को मैथुनादि की शंका

(415-6) ★ अन्य प्रकार से धात्रीत्व - घर में प्रविष्ट साधु कने स्त्री को दुःखी देखकर पूछा। पूछने पर स्त्री ने कहा कि मैं इस घर में धात्री हूँ किंतु आज वहाँ नई धात्री आ गई है। तो साधु बोला, तू चिंता मत कर, मैं उसी घर में तुझे फिर से स्थापित करूँगा। इस प्रकार साधु उससे नई धात्री के बारे में पूछता है - वह कन्या है या परिणत है? स्तन कैसे हैं? शरीर कैसा है। वि.।

(417) → फिर उस घर में जाकर स्वामि को बोले - यह बालक तेरे कुल का दीपक है, यदि तू जैसी-तैसी धात्री रखेगा तो यह पुष्ट नहीं होगा, इसलिए तू धात्री के दोषों को जान। फिर गृहपति के पूछने

(418) → पर धात्री के दोष कहे ~~- यदि ...~~। फिर गृहस्वामी पुरानी धात्री को वापस रखे तो दोष

(420) → कहते हैं - (i) नई धात्री द्वेष करेगी (ii) वह कलंक देगी कि यह साधु जार है (iii) वह साधु का वध भी कर सकती है (iv) पुरानी धात्री सोचे कि नई धात्री बदला लेगी इसलिए वह नई धात्री प्रारे। शेष धात्रीत्व क्षीर के लक्षण, दोष वि.

(421-6) ★ क्षीरन धात्रीत्वे दृष्टांतः - कोत्पलकिरनगरे परिक्षीणजङ्घाबलाः सङ्गमस्थविराः

(427) ★ सूरयः ×

(आ.40-2) तैः दुर्भिक्षे जाते सति सिंहाख्यः स्वशिष्यः आचार्यपदे स्थापयित्वा गच्छं सुभिक्षे देशे प्रेषितवान् × स्वयं एकाकी तत्रैव तस्थौ × तत्क्षेत्रं नवभिः भागैः विभज्य यतनया सासक्त वर्षाशत्रं च कृतवन्तः × सिंहाचार्यः उक्तनिमित्तं क्षुल्लकप्राणं शिष्यं प्रेषितवान् × स सूरिंतस्मि

क्षेत्रे दृष्ट्वाऽचिन्तयत् अमी प्रासकल्पं भावतोपि न दद्युः, ततः शिथिलैः सह एकत्र न वस्तव्यं इति विचार्य बहिः मण्डपिकायां तस्थौ × आचार्यः भिक्षां अन्तप्रान्तगृहेभ्यः गृह्णन्ति, स तु विच्छायमुखः जातः तस्य भावं अवगम्य सूरयः ईश्वरगृहे प्रविष्टाः × तत्र बाल्यकः सदैव रोदिति × सूरयः चक्षुटिकां आलापयन्ति - प्रासुः वत्स! मा रोदीः × सूरिप्रभावतः व्यन्तरी प्राणेशत् × रोदितुं स्थितः × हृष्टः ईश्वरः मूर्यासः भोदकान् दत्तवान् × प्रतिक्रमणे सूरिणा दत्तो भणितो वत्स! धात्रीपिण्डं चिकित्सापिण्डं चात्मोच्चय × सोऽपृच्छत् कथं × तेऽकथयन् - अधुवात्मकक्रीडनेन चक्षुटिकाकरणात् च × ततः स चिन्तयति - स्वयं तु प्रासकल्पं न दधाति, इतादृशं पिण्डं प्रतिदिनं गृह्णाति, प्रां आत्मोच्चयति × कुपिता देवी सूरिगुणावर्जिता वसतौ अन्धकारं स्वातं वर्षं विकुर्वितवती × स भयात् आह - भगवन्! कुत्राहं व्रजामि? × तैः आमणि - वसतौ प्रविश × सोऽवादीत् न पश्यामि द्वारं × सत्वेषणा सूरिणा निजाङ्गुलिः क्षुत्य उद्दीपिता × सा दीपशिखा इव अज्वलत् × सोचिन्तयति - एष सूरिः अग्निं अपि परिग्रहे बिभर्ति × ततः क्रुध्या देवी तं निर्भर्त्सितवती।

उक्तं धात्रीद्वारम्।

दूती दूती - 2

(428-9) * 2.

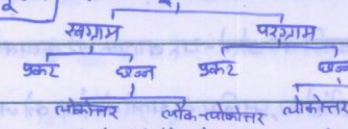

→ स्वग्राम = जो उसी गांव में संदेश दे। परग्राम = जो अन्य गाँवों में जाए।

→ प्रकट = जो प्रकट रूप से संदेश दे। प्रच्छन्न = जो गुप्त रीति से सांकेतिक भाषा द्वारा संदेश दे।

→ लोकोत्तर = जो सिर्फ संघाटक साधु से गुप्त हो। लोक-लोकोत्तर = जो सुनने वाली स्त्री के अलावा अन्य लोगों से भी और साधु से भी गुप्त हो।

(430) ★ प्रकट दूतीत्व - गोचरी गया साधु स्व या पर ग्राम में संदेश दे कि तेरी माता तुझे यह कहती है वि.।

(431) ★ लोकोत्तर प्रच्छन्न - ⓐ दूतीत्व गर्हित होने से ⓑ संघाटक साधु न दूतीदोष न जाने, इन कारण से वह प्राता पुत्री को कहे कि तेरी पुत्री जिनशासन में अकुशल है, जो मेरे द्वारा इस प्रकार संदेश भिजवाती है, माता भी समझकर गूढ भाषा में उत्तर दे।

PAGE : 67
DATE : / /

(432) ★ लौकिकोत्तर उभय छन्न- सुनने वाली स्त्री के अलावा गृहस्थ और साधु किसी भी खबर न पड़े वैसे बोले।

(433-4) ★ दृष्टान्त - विस्तीर्ण: ग्राम:× तस्यसमीपे गोकुल ग्राम:× विस्तीर्णे धनदत्त:कुटुम्बी, ~~भार्या~~

~~धन~~ धनदत्त — विषमति

देवकी — सुंदर

बलिष्ठ रेवति — संगम (गोकुल ग्रामे)

विषमति:मृता× धनदत्त: दीक्षां अग्रहीत्× ~~एक~~ एकदा पुन: ग्रामे आगत: स देवक्या: वसतौ अस्थात्× तदानीं द्वयो: ग्रामयो: वैरं वर्त्तते× विस्तीर्णग्राम्या: गोकुलग्रामस्योपरि धाडीं सूत्रितवन्त:×

धनदत्त: भिक्षार्थं गोकुलं ~~गच्छाल~~× देवकी अवारीत्-पित:! मम दुहित्रे रेवत्यै कथय, अन्यथा सकलं स्वकीयं सप्रागमिष्यति तत: एकान्ते स्थापये:× साधुना तस्यै कथितं×तया च भर्त्रे× तेन च ग्रामाय× ग्राम: ~~सज्जी~~सज्जीभूत:×महद् युद्धं जातं× सुंदर-बलिष्ठ-सङ्गम त्रयो पि मृता:× देवकी प्ररोदिति× लोकश्च अवारीत्× यदि गोकुलग्राम: आगच्छन्तीं धाडीं नाज्ञास्यत् तत: असन्नद्ध: नायोत्स्यत, न च तव पत्यादयो म्रियेरन्×तच्छ्रुत्वा तया स साधु: निन्दित:×स लौके प्रतिस्थानं धिक्कारं लभते× वचनस्य प्रामाण्यं उदपादि। उक्तं दूतीद्वारम्।

(435) ★1. निमित्त - तीनों काल विषयक, प्रत्येक काल में ६ प्रकार - लाभालाभ, सुखदुःख, जीवितमरण। सभी प्रकार के निमित्त कहना, दोष है। कुछ निमित्त साधु और अन्य जीव दोनों को लगते हैं, कुछ सिर्फ साधु को, कुछ पर को।

(436) (437-443) ★ पर विघात करने वाले निमित्त का दृष्टांत - कोई ग्रामणी: पत्नी को छोड़कर गया× पत्नी के शील की परीक्षा के लिए वह गुप्तरूप से आया× उसकी पत्नी को ईसाधु द्वारा निमित्त से आकर्षित करवाई×साधु ने उसे कहा तेरा पति वापस आ रहा है× पत्नी ने पति को लेने के लिए सभी कुटुंब को भेजा× ग्रामणी ने पूछा तुम्हें कैसे पता चला, उन्होंने कहा तेरी पत्नी ने कहा×इस बीच साधु ने नायक के साथ उसकी पत्नी

असम्यक् त्रिधा- ऊन, अधिक, विपरीत

PAGE :
DATE : / /

की सभी गुप्त चेष्टा, ज्ञात पत्नी को कही x पति आने पर पत्नी ने बहुमान किया x उसके पूछने पर पत्नी ने साधु का कहा x ब्राह्मणी ने शंका से इसे पूछा तूने यह कैसे जाना? x साधु बोला निमित्त द्वारा x उसने पूछा इस घोड़ी के पेट में क्या है? x वह बोला दांये पुंढू बच्चा पुत्र x उसने पेट काटा, वही निकला ब्राह्मणी बोली यदि यह नहीं होता तो तू भी नहीं होता।

→ दोष- (i) घोड़ी-पुत्र दोनों की हिंसा (ii) मैथुन शंका वि.। उक्तं निमित्तद्वारम्।

(437-8) ★ 4. आजीव द्वार — आजीव — प्रत्येक 2 प्रकार- (i) सूचासे = अपने रूप से कहना
जाति कुल गण कर्म शिल्प
असूचासे - दूसरे वचन से।

(ii)

→ जाति = माता से उत्पन्न, कुल = पिता से उत्पन्न, गण = मल्लय वि. के समूह, कर्म = कृषि वि. शिल्प = तूर्णन, सीवन वि.। कर्म = अप्रीति उत्पादक अथवा अनाचार्य उपदिष्ट, शिल्प = प्रीति उत्पादक अथवा आचार्य उपदिष्ट।

(439-40) ★ सूचा से जाति आजीवन - कोई घर में प्रविष्ट साधु बोले कि तेरा यह पुत्र यज्ञ वि. कार्य में कुशल या अकुशल है, यह सुन ब्राह्मण बोले आप भी जाति से ब्राह्मण लगते हो, तो साधु मौन रहे। असूचा से - दूसरे कहे कि मैं भी जाति से ब्राह्मण हूँ।

→ दोष- (i) यदि ब्राह्मण आधिक हो तो प्रभूत अन्न देगा, जिससे आजीवन दोष।
(ii) यदि अन्न हो तो 'तू ब्राह्मणत्व से भ्रष्ट होकर साधुपना' इस प्रकार अपमान, ताड़न, मारण आदि कुलादि उपजीवन। उक्तं आजीव द्वारम्।

(441-2) ★

(443-4) ★ 5. वनीपक — 5 प्रकार- (i) श्रमण विषयक (ii) ब्राह्मण (iii) कृपण भिखारी, गरीब (iv) अतिथि (v) श्वान

→ वनीपक- 'वनु याचने' ईपक औणादिक प्रत्यय।

→ वनीपक = दायक को सम्मत ऐसे श्रमण वि. के विषय में स्वयं को उनका भक्त दिखाकर पिंड याचना।

(445-6) ★ श्रमण = निर्ग्रंथ + शाक्य (बौद्ध) + तापस (वनवासी) + गैरिक (परिव्राजक) + गोशाले के शिष्य
वनीपकत्व - ये किसी घर में भोजन न करते हो, तो साधु वहाँ जाकर उनकी प्रशंसा करे, कि इन्हें दान देने से बहुत फल होता है वि.।

(457) ★ दोष - (i) प्रशंसा से लोक में मिथ्यात्व पुष्टि (ii) दायक भद्रक हो तो आधाकर्म वि. (iii) कोई साधु साधुवेष छोड़कर बौद्ध भिक्षु वि. बन जाए (iv) लोक निंदा - ये आहार के लिए कुत्ते जैसे भटकते रहते हैं वि (v) शाक्य अथवा शाक्य के भक्त शत्रु बन जाए।

५५८ - ब्राह्मण, ५५९ - श्वकृपण, ५६० - अतिथि, ५६१-२ - श्वान प्रशंसा / ५६३ - दोष पूर्ववत् ५६४ - काक वि. में वनीपकत्व।

(455) ★ दोष का गुरुत्व - पात्र और वा अपात्र में दीयमान दान फल या प्रकृत्व बात्या कहने में दोष है, अपात्रदानस्य पात्रदानसमतया प्रशंसनेन सम्यक्त्वातिचारसम्भवात् किं पुनः प्रपात्राण्येव साक्षात् प्रशंसतः? सुतरां महान् दोषः। उक्तं वनीपक द्वारम्,

(456) द्वार ★6. चिकित्सा 3 प्रकार

(457) (i) कोई रोगी द्वारा पूछा हुआ साधु बोले - क्या मैं वैद्य हूँ जो तेरी चिकित्सा करूँ? अर्थापत्ति से वह 'वैद्य के जाना' समझ जाए।

(458) (ii) 'इस प्रकार का मेरा रोग, इस भैषज से शांत हुआ था, अथवा हम इस रोग को इससे शांत करते हैं' इस प्रकार पूछा हुआ साधु बोले।

(459) (iii) साधु सीधे ही खुद वैद्य बनकर औषध वि. बताए, दे।

→ प्रथम दो सूक्ष्म चिकित्सा, अंतिम बादर।

(460) ★ दोष - (i) असंयमयोगों का प्रवर्तन - गृहस्थ तप्त प्रयोगात्मक समान है, नीरोग होकर जो भी सावद्य कार्य करेगा, उसमें साधु का अधिकरण। ☞ इसमें दुर्बलव्याघ्र दृष्टांत - अन्यत्रेन अटव्यां भक्ष्यं अप्राप्नुवन् दुर्बलः व्याघ्रः केनापि चिकित्स्यते, प्रगुणीभूतश्च स पथभ्रंतस्य वैद्यस्यैव विघातं करोति, ततः शेषबहुजीवानां, एवं गृहस्थः साधोरेव संयमप्राणान् हन्ति।

(i) यदि चिकित्सा के बाद रोग बढ़ जाए, तो वह राजकुल वि. में ले जाए पुनर्वचन उड्डाह वि। उक्तं चिकित्सा द्वारम्।

(461) ★(7-10)

क्रोध-मान-माया-लोभ

क्रोध पिंड - चेवर प्राप्त नहीं करने पर हस्तकल्प नगर, सेवईया - गिरिपुष्पित नगर, मोदक - राजगृह, सिंहकेसरिया मोदक - चंपा।

(462-3) ★7. क्रोध पिंड - साधु का विद्याप्रभाव, श्राप, राजकुल में प्रियता, सहस्रयोधि पन जानकर गृहस्थ द्वारा जो पिंड दिया जाए।

अथवा ब्राह्मण वि. को देते हुए देखकर साधु याचना करता हुआ भी प्राप्त नहीं करने पर कुपित होगा तो हमारा अच्छा नहीं होगा, इस प्रकार सोचकर गृहस्थ दे।

(464) ★ दृष्टांत - हस्तकल्पं नगरं × मृतकभक्ते प्रासिके दीयमाने क्वचिद् ब्राह्मणगृहे साधुः मासक्षपण-पारणार्थं प्रविशेत् × द्वौवारिकेण साधुः प्रतिषिद्धः × ततः कुपितः साधुः अवदत्, इदानीं न दत्ते तर्हि अन्यस्मिन् प्रासिके दास्यथ × दैवात् अन्यत् अनुध्यं मृतं गृहे × तस्य मृतकभक्ते दीयमाने स एव साधुः द्वौवारिकेण प्रतिषिद्धः × ततः एवमेव ब्रूत्वा स निर्गतः × पुनः दैवात् एवमेव द्वितीयवारं अभवत् × तृतीयवारं एवं उक्तेसति साधुना द्वारपालः गृहनायकाय वृत्तान्तं अकथयत् × तेन साधुं सादरं क्षमयित्वा घृतपूरादिकं यथेच्छं दत्तानि।

(465) (465-73) ★8. मान पिंड दृष्टांत - दूसरे साधु द्वारा चढ़ाया हो अथवा स्वयं ही गर्वित हो कि मैं जहाँभी जाता हूँ वहाँ सब कुछ प्राप्त करता हूँ अथवा तुझे कुछ नहीं मिलेगा इस प्रकार अन्य द्वारा अपमानित होने से अहंकार से जो पिंड लाए वह मान पिंड।

दृष्टांत - गिरिपुष्पित नगर × सिंहः सूरयः × सेवकिकाक्षणः तत्र समजनि × तद्दिने तक्षणश्रमणानां समवायोऽभवत् × तत्र कोपि अनापीत् - को एतेषां मध्ये ज्ञातरेव सेवकिका आनेष्यति ? × तत्र गुणचन्द्रः क्षुल्लकः स्वीकरोति × ततः सोऽआणीत् - ताः सेवकिकाः परिपूर्णा घृतगुडपूर्णाः च आनेतव्याः × मैं क्वापि कौटुम्बिकगृहे प्रविष्टः × दृष्टाः सेवकिकाः × तेन स्वयोचना गृहिणी याचिता किन्तु सा सर्वथा प्रतिषिद्धवती × क्षुल्लकोऽवदत् - नियमाद् इमाः मया गृहीतव्याः ×

षट् महेत्याप्रधानाः पुरुषाः

(i) श्वेतांगुलि (ii) बकोड्डायक : (iii) किंकर (iv) स्नायक : (v) गृध्र इव दरिखि (vi) हदज्ञ।

PAGE : 71
DATE : / /

शुल्कोचनापि उवाच - यदि त्वं एतासां मध्ये किमपि त्वमसे ततो मे नासापुटे त्वया प्रसवणं कृतं × क्षुल्लकः गृहात् निर्गत्य कञ्चित् पप्रच्छ - कस्येदं गृहं? × सोऽवादीत् - विष्णुमित्रस्य × स इदानीं क्व वर्तते × × पर्षदि × ततः स पर्षदि गत्वा पृष्टवान् - यूयं को युष्मासु विष्णुमित्रजना अवारिषुः - किं तेनैव तव? × साधुः अवोचत् - तं याचिष्ये × तैः अवाचि - कृपणोऽसौ × विष्णुमित्रः 'मा मे अपभाजना भूत्' इति अग्रतः बभाण - अहं विष्णुमित्रः, याचस्व मां ततः शुल्कको ऽवादीत् - यदि त्वं महेत्याप्रधानानां षण्णां पुरुषाणां अन्यतमोन, ततः अहं याचे × × पर्षज्जनाः अवारिषुः - के ते षट् पुरुषाः? शुल्कक आह -

(i) श्वेतांगुलि - क्वचिद् ग्रामे कोपि पुरुषः निजभार्याच्छन्दानुवर्ती × स प्रातरेव भोजनं याचते × सा च भणति - नाहं उत्थातुं उत्सहे, ततः त्वमेव चुल्ल्यां भस्म पक्षिप्य वह्निं प्रज्वाल्य स्थाल्यीं समारोपय, यावत्पक्त्वा कथय, ततोहं परिवेषयामि × स प्रतिदिनं तथैव कुरुते × ततः लोकेन भस्मसमाकर्षणेन श्वेतीभूताङ्गुलिदर्शनात् 'श्वेतांगुलि' इतिनाम कृतं।

(ii) बकोड्डायकः - कोपि पुरुषः निजभार्यामुखदर्शनसुखतत्परः × सा भणति - अहं स्नात्वा भुक्ता, ततः त्वमेव तडागाद् उदकं आनय × 'दिवसे मा द्राक्षीत् लोकः' इति स रात्रौ पश्चिमयामे उदकं आनयति × तस्य पदसञ्चारशब्दश्रवणात् चटचटरव-बुद्बुद् शब्दश्रवणतश्च बका उड्डयन्ते × एतं वृत्तान्तं विदित्वा लोकेन तथैव नाम कृतं।

(iii) किंकर - कोपि पुरुषः निजभार्यास्तनजघनादिस्पर्शतत्परः × प्रातः सा वदति - दयिते! किंकरोमि × सा भणति उदकं आनय × उदकं आनीय पुनः भणति - किं करोमि? × सा भणति तण्डुलान् कण्डय × एवं यावत् भोजनादूर्ध्वं तस्याः पादान् प्रक्षाल्य घृतेन क्षणयति × एवं लोकेन किङ्कर इति नाम निर्वर्तितं

(iv) स्नायक - कोपि आर्याऽद्देशवर्ती पुरुषः भार्यां अन्यदा अवारीत् - प्राणेश्वरि! अहं स्नातुं इच्छामि × तयोक्तं - यदि एवं तर्हि आम्रपल्लवकान् शीतायां क्षिप्त्वा, स्नानपीठिकां परिधाय तैलेन आत्मानं अभ्यङ्ग्य घटं च गृहाण, ततः तडागे स्नात्वा घटं भृत्वा आगच्छ × स सर्वदैव एवं करोति × एवं अर्थस्य प्रकरणार्थं हासेन लोकेन स्नायकः नाम कृतं।

(v) गृध्र इव रिङ्खि – कोपि पुरुषः रसवत्यां भार्यां भोजनं अयाचिष्ट × तयोक्तं - स्थालं आदाय मम समीपे समागच्छ × स एवं करोति × भोजनं परिवेष्य तयोक्तं - स्थाने गत्वा भुङ्क्ष्व × स तथैव करोति × पुनः तेन तैलं याचितं × तया तथैव उक्तं तेन च तथैव कृतं × स गृध्र इव उत्कटिकः रिङ्खन् तक्रादि गृह्णाति × एवं लोकेन ज्ञात्वा तस्य नाम कृतं ।

(vi) हृदज्ञः – कस्यापि भार्याऽऽदेशकारिणः पुरुषस्य भार्यया सह विषयसुखं अनुभवतः पुत्रो बभूव × स पालनके स्थितः अतिबालत्वात् पुरीषं उत्सृजति × तेन पुरीषेण पालनकं वस्त्राणि च खरण्टयति × ततः सा भणति बालस्य पुत्रे प्रक्षाल्य पालनकं वस्त्राणि च × स तथैव करोति × लोकेन एवं ज्ञात्वा बालस्य हृदयं प्रक्षालयितुं जानाति इति हृदज्ञः नाम कृतं ।

क्षुल्लकेन स्वमुक्ते सति अट्टाहासेन हसद्भिः पर्षज्जनैः अमाणि – एष षण्णां अपि पुरुषाणां गुणान् वक्ते तत् मां याचिष्ट एनं × विष्णुमित्रोऽवदत् - मां याचस्व × क्षुल्लक आह - देहि मे घृतगुडसंयुक्ताः सेवलिकाः × विष्णुमित्रेणोक्तं - दद्यामि, गृहं प्रति चलितवान् × द्वारस्य समीपे क्षुल्लकः अभाणीत् - अहं प्रथमप्रपि तव गृहे समागतोऽस्मि परं तव भार्यया प्रतिज्ञा व्यधायि, ततः इदानीं यद् भुक्तं तत् समाचर × सोऽवादीत् - क्षणं द्वारे एव अवतिष्ठस्व × मित्रः प्राविशत् × पृष्टा सती भार्या उक्तवान् - कृतं सर्वं परिपूर्णं × ततो 'स्तोकः एष गुडः मात्वाद् प्रभूतं आनय' इति तद्वचनात् मालं आरूढा सा तेन निःश्रेणिः अपनीता × ततः क्षुल्लकं आकार्य दातुं आरब्धानि × अत्रान्तरे मात्वाद् उत्तरितुं सुलोचना निःश्रेणिं न पश्यति × यावत् सा प्रसरं आलोकते तावत् पश्यति सेवलिकाः दीयमानाः × मा देही मा देही इति पूत्कुरुते × क्षुल्लकः 'मया तव नासिकापुटे मूत्रितं' इति निजनासापुटे अङ्गुलिं अभिनयं कृत्वा सेवलिकाः गृहीत्वा जगाम ।

→ दोष – (i) दम्पती को द्वेष (ii) बद्धव्यवच्छेद × (iii) एवं अपमानिता सा कदाचिद् आत्मविपत्तिं अपि कुर्यात्, ततः उड्डाहः ।

(474-80) ★ 9. आधा पिंड दृष्टान्त – राजगृहं नगरं × सिंहरथो राजा × विश्वकर्मा नटः × तस्य द्वे सुते × पुत्र्यौ ×

धर्मरुचिसूरयः × तेषां अन्तेवासी आषाढभूतिः × स भिक्षार्थं भ्रमन् विश्वकर्मणो नटस्य गृहे
प्राविशत् × तत्र्यः मोदकः × द्वारे निर्गत्य चिन्तयति- एष सूरीणां भवति × ततः रूपं परावर्त्य
अन्यं मोदकं मार्गयति × एवं क्रमशः काण-कुब्ज-कुष्ठि रूपं कृत्वा चत्वारः मोदकाः लब्धाः ×
रूपाणि कुर्वन् स मात्रोपरिस्थितेन नटेन ददृशे × स चिन्तयति - एष नटो भवतु × एवं चिन्तयित्व
तेन पात्रप्रमाणैः मोदकाः दत्ताः × स्वस्य द्वे पुत्र्यौ कथयति- एनं ~~आ~~ आकर्षतं × पुत्र्यौ तथै
उपचरतः × एकदा रहसि पुत्रीभ्यां स भणितः - आवां त्वयि अनुरक्ते, ततः परिणीय ~~मुञ्च~~ भुन्धि
चारित्रावरणंकर्म तस्य उदये इत्थम × ततः गुरुपार्श्वे गत्वा रजोहरणं स मुक्तवान् × परिणीते द्वे कन्ये
नटेन द्वे कन्ये भणिते- अयं नियमात् उक्तप्रकृतिः, तत पुत्राभ्यां सर्वदैव मद्यपानविरहितत्वेन
स्थातव्यं अन्यथा एष विरक्तो यास्यति × स च सर्वेषामपि नटानां अग्रणीः बभूव × एकदा
राज्ञा नटाः समादिष्टाः - अद्य निर्मर्हेलं नाटकं नर्त्तनीयं × ततः स एकाकी राजकुलं गतः ×
तस्य भार्ये सुरां निःशङ्कं पीतवत्यौ × मदवशाच्च विगतवस्त्रे भूमौ सुप्ते तिष्ठतः × राजकुले
परराष्ट्राक्रमणभयात् सर्वे नटाः मुत्कलिताः × स आषाढभूतिः निजावासे आगत्य निजप्रि
वीभत्से दृष्ट्वा जातसंवेगः गृहात् निर्गतः × विश्वकर्मा तं निर्गच्छन्तं दृष्ट्वा पुत्र्यौ
निर्भर्त्सयति- दुरात्मिके! तं निवारयतं, यदि निर्वर्त्तयितुं न शक्नुथः तर्हि प्रजीवनं
याचेथाम् × ते प्रस्पाद्य तस्य पादयोः लग्ने × ततः प्रजीवनार्थं तेन राष्ट्रपालं नाटकं कृतं ×
सिंहरथराज्ञा नाटकार्थं पञ्चशतानि राजपुत्राणां दत्तानि × नाटके भरतः आदर्शगृहे केवलज्ञानं
केवलज्ञानं प्राप्य पञ्चशतपरिवारेण प्रव्रज्यां आददाति × ततः सर्वजनान् धर्मलाभयित्वा
आषाढभूतिः पञ्चशतेन सह गन्तुं प्रावर्त्तत × ततः राज्ञा निवारितः × तेनोक्तं- किं भरतः दीक्षां
आदाय निवृत्तः? इति गुरुसमीपं गतः × वस्त्रस्मरणादि समस्तं आर्याभ्यां दत्तवान् × गृहीता
दीक्षा आर्याभ्यामपि × तद् नाटकं विश्वकर्मणा कुसुमपुरे नर्तितुं आरब्धं × तत्रापि पञ्चशतैः
संख्याः क्षत्रियाः दीक्षां गृहीतवन्तः × ततः लोकेन 'पृथिवी निःक्षत्रिया भविष्यति' इति
नाटक-पुस्तकं अग्नौ प्रक्षिप्तं ।

→ अपवाद - ग्लान, क्षपक, प्राघूर्णक, स्थविर, संघकार्य वि. के लिए माया पिंड भी सेवन किया जाता है।

(481) ★ 10. लोभ पिंड - (i) 'आज मैं सिंहकेसरिया मोदक ही ग्रहण करूँगा' इस प्रकार अन्य वस्तु प्राप्त होने पर भी ग्रहण न करे (ii) अथवा प्राप्त होती हुई वस्तु को 'यह अच्छे रस वाली है' इस प्रकार रसगृद्धि से ग्रहण करे।

(482-3) ★ दृष्टांत - चम्पा पुरी × सुव्रतो साधुः × तत्र मोदकोत्सवः समजनि × तद्दिने सुव्रतः 'अद्य अहं सिंहकेसरकान् मोदकानेव गृहणामि' इति सम्प्रधार्य भिक्षां प्रविष्टो प्रहरद्वयं परिभ्रमति × किन्तु न लब्धाः मोदकाः × ततः म्लानचित्तो बभूव × ततो गृहद्वारे प्रविष्टान् धर्मलाभस्य स्थाने सिंहकेसरा इति वदति × दिनं भ्रान्त्वा रात्रौ तथैव परिभ्रमन् प्रहरद्वयसमये कस्मिंश्चित् श्रावकगृहे 'सिंहकेसरा' वदति × सोपि श्रावकः गीतार्थः दक्षश्च × तेन चिन्तितं - नूनं अस्य चित्तं नष्टं × ततः सिंहकेसराणां भाजनं तेन ढौकितं × गृहीत्वा तस्य चित्तं स्वस्थीभूतं × श्रावकेण पृष्टं - भगवद्भिः प्रत्याख्यातः, किंस्वपूर्णो न वा? × ततः स अदृश्यं तेनोपलक्षितं × ततः स आत्मानं निन्दन् मोदकात् च परिष्ठापयन् केवलज्ञानं आप। उक्तं क्रोध-मान-माया - लोभ द्वारम्

(484) ★ 11. संस्तव 2 प्रकार (i) परिचयरूप = संबंधी का (ii) श्लाघारूप = वचन संस्तव

संबंधी - 2 प्रकार ⓐ पूर्व संस्तव = माता वि. ⓑ पश्चात् = सास् वि.

(ii) श्लाघा - 2 प्र. ⓐ पूर्व ⓑ पश्चात्

(485-6) ★ संबंधी - ⓐ पूर्व - साधु घर में प्रविष्ट होकर स्त्री को और स्वयं की वय जानकर संबंध की कल्पना करे। यदि स्वयं मध्यमवय का हो तो स्त्री को वयोवृद्ध माता, मध्यमवय स्त्री को पत्नी और बाल्यवय को पुत्री माने। फिर स्त्री पूछे कि क्यों ऐसे अधीर दिख रहे हो, तो वह कहे कि ऐसी तो माता वि. थी।

(487) ★ दोष - (i) वह स्त्री मातृत्व प्रकट करने के लिए स्तन साधु के मुख में डाल दे। (ii) स्नेह वृद्धि से संबंध हो जाए (iii) स्त्री विधवा पुत्रवधू साधु को दे। वि.

(488) ★ (b) पश्चात् संस्तव के दोष - (i) 'मेरी सासू ऐसी थी' इस प्रकार कहने पर वह स्त्री स्वयं की पुत्री का दान करे (ii) 'मेरी पत्नी ऐसी थी' इस प्रकार कहने पर यदि उसका पति पास में हो तो साधु का घात करे (iii) पति पास में न हो तो वह स्त्री पत्नी की आचरण कर व्रतभंग करे।

(489) ★ पूर्व-पश्चात् दोनों संस्तव के साधारण दोष - (i) 'हमारे चित्तावर्जन के लिए यह चाटु बोलता है' निंदा (ii) गृह से निकाल दे (iii) यदि वे भक्त हो तो आधाकर्म वि. करे।

(490-3) ★ वचन संस्तव - (a) पूर्व - सामने वाले के दान देने के पहले ही उदारता वि. सत् असत् गुणों की प्रशंसा करे। (b) पश्चात् - दान देने के बाद करे

→ eg. (i) तेरे द्वारा दर्शन से हमारी आँख पवित्र करायी (ii) तेरे गुणों की प्रशंसा जो बाहर सुनी थी, वह यथार्थ है वि। उक्तं संस्तवद्वारम्।

(494) ★ P.T. विद्या-मन्त्र] विद्या = ससाधना स्त्रीरूपदेवताधिष्ठिता वा अक्षरपद्धतिः।
मन्त्र = ससाधना पुरुषरूपदेवताधिष्ठिता वा।

(495-6) ★ विद्या - उदाहरण - गन्धसमृद्धे नगरे × धनदेवः भिक्षूपासकः ×स साधुभ्यो न ददाति एकदा तरुणश्रमणानां उत्त्यापे एकेनोक्तं - अस्ति कोपि यः एनं घृतगुडादिकं दापयति × ततः केनापि ऊचे - अनुजानीध्वं मां × तैरनुज्ञातः × गतः सः × तस्य गृहं अभिमन्त्रितं विद्यया × धनदेवो ब्रूते - किं प्रयच्छामि ? × तैरुक्तं - घृतगुडवस्त्रादि × तेन प्रचुरं दापितं × क्षुल्लकेन संहृता विद्या × जातस्वभावस्थो स घृतादिकं स्तोकं दृष्ट्वा 'केन हृतं ? केन मुषितं ?' इति वित्यापितः × ततः परिजनेनोक्तं - त्वया एव दापितं × ततः मौनेनास्थितः।

(497) ★ दोष - (i) स्वभावस्थ होकर वह द्वेष कर, वह भी विद्या से स्तंभन वि. करे (ii) 'ये त्योग पाप-माया से जीने वाले हैं' निंदा (iii) राजकुल में तेजाकर वेश त्याग कराए' उड्डाह।

PAGE :
DATE : / /

(५७४) ★ क्षेत्र दृष्टांत - प्रतिष्ठानपुरं × मुरुण्डः राजा × पादलिप्तसूरयः × राज्ञः अतिशयशीरोवेदन बभूव × केनापि उपायेन शमयितुं शक्यते न × तत सूरयः आकारिताः × यथा लोको न जानीते तथा मन्त्रं व्याचक्षाणः प्रावरणमध्ये निजदक्षिणजानुशिरसि पार्श्वतो निजदक्षिणहस्त-प्रदेशिनी यथा यथा भ्राम्यते तथा तथा वेदनाऽपगच्छति × राजा अतिशयेन उपासकः जातः × विपुलं भक्तपानादिकं दत्तवान् ।

(५७५) ★ दोष - इस कथा में नहीं था किंतु गा. ५७५ जैसे ही संभव है ।

अपवाद - संघादि प्रयोजन में प्रयोग करना चाहिए। उक्तं विद्या-मन्त्राख्यं द्वारद्वयम्,

(६००) ★ 14-15-16 चूर्णयोगमूलकर्म - चूर्ण - दो क्षुल्लक का दृष्टांत । योग - सम्मितसूरि ।

मूलकर्म - दो युवति का दृष्टांत (विवाह विषयक), दो दंडिनी (गर्भधान रूप) ।

(भा. ३८-३९) ★ 15 चूर्ण - कुसुमपुरं × चन्द्रगुप्तो राजा × चाणक्यः मन्त्री × जड्घाबलपरिहीणाः सुस्थितसूरयः दुर्भिक्षं अपपतत् × सूरिभिः चिन्तितं - सम्प्रदाहव्यं शिष्यं सूरिपदे संस्थाप्य सुभिक्षे प्रेषयामि, तस्मै योनिप्राभृतं एकान्ते व्याख्यातुं आरब्धं × तत्र क्षुल्लकद्वयेन अदृश्यीकरणनिबन्धनं अञ्जनं व्याख्यामानं शुश्रुवे × सकलगच्छसमेतो सम्प्रदः शिष्यः देशान्तरे मुक्तवलितः × स्वयं एकाकिनः अवतस्थिरे × कतिपयदिनानन्तरं क्षुल्लकद्वयं उपाचार्यं आजगाम × आचार्या अपि यत् किमपि जल्पन्ति तत् सम्यं विरच्य क्षुल्लकाभ्यां सह भुञ्जते × सूरीणां दौर्बल्यं अभवत्, क्षुल्लकाभ्यां चिन्तितं - अवमोदरता सूरीणां ततो वयं अञ्जनं कृत्वा चन्द्रगुप्तेन सह भुञ्जावहे × तथैव कृतं × चन्द्रगुप्तस्य शरीरे कृशता बभूव × चाणक्येन पृष्टः सन् स सकथयत् - आहार-अलाभतः × चाणक्येन चिन्तितं - नूनं कोपि अञ्जनसिद्धः राज्ञा सह भुङ्क्ते × तेन भोजनमण्डपे अतीवश्लक्ष्णः इष्टकाचूर्णो विकीर्णः × दृष्टानि मनुष्यपदानि × ततो द्वारं पिधाय अतिबहलः धूमः निष्पादितः × तयोः अञ्जनं अक्षुभ्निः सह गलितं × प्रत्यक्षौ बभूवतुः × कृता चन्द्रगुप्तेन आत्मजुगुप्सा - अहो ! मम पाण्डित्यं भ्रष्टं × ततः चाणक्येन प्रशंसितः राजा - धन्यः त्वं, यो यतिभिः पवित्रीकृतः × चाणक्येन रजन्यां वसतौ आगत्य सूरयः उपात्तविद्याः - क्षुल्लकौ मुक्ताकं

उद्गाहं कुरुतः × ततः सूरिभिः स उपालब्धः - त्वमेव अपराधी, यो क्षुल्लकयोः निर्वाहं न चिन्तयसि × ततः तेन सूरयः क्षामिताः कृ × कृता संघस्य चिन्ता तेन।

(501) ★ दोष - गा. पशु। (i) द्वेष करे साधु पर (ii) आहार प्राप्ति बंद करे (iii) नाश करे।

(502) ★ 18. योग
- आहार्य
  - आचर्ष
  - पूपवास
- अनाहार्य

~~सौभाग्य~~ योग = जो लोगों का सौभाग्य या सौभाग्य करने वाले चूर्ण हैं।

आहार्य - जो पानी वगैरे के साथ खाए जाते हैं।

→ आचर्ष - जो पानी आदि के साथ घिसकर पीये जाते हैं। ये सूखे या गीले तीन सामान्य द्रव्य से निष्पन्न होते हैं।

→ ~~पूपवास - जो चूर्ण घि के साथ मोलकर खाये जाते हैं।~~

→ पूपवास - जो चूर्ण सूखे ही होते हैं, खाने के लिये हुए और सुगंधीद्रव्य निष्पन्न।

→ अनाहार्य - पाद पर लेप करने हि.।

(503-5) ★ पादलेपका दृष्टांत - अन्यत्पुरं × द्वे नद्यौ - कृष्णा वेन्ना च × तयोः अपान्तराले ब्रह्मद्वीपः × तत्र देवशर्मा तापसः एकोनपञ्चशततापसपरिवृतो परिवसति × स पर्वसु सर्वैः तापसैः सह कृष्णानदीं उत्तीर्य नगरं आगच्छति × लोकः विस्मयचेताः तस्य सत्कारं आचरति ब्रह्मकल्पजनान् च कुत्सयते यथा न युष्मद्गुरूणां एतादृशी शक्तिः × श्रावकैः समितसूरिभिः आख्यायि × ततः श्रावकैः तस्य मातृस्थानप्रकरणार्थं भोजनार्थं निमन्त्रितः × प्रारब्धं पादप्रक्षालनं × स च न ददाति × बलादपि पादौ प्रक्षालितौ × भोजनानन्तरं नदीं उत्तरितुं प्रावर्तत किंतु लेपाभावे निमज्जितुं लग्नः × तस्य अपभ्राजना जाता × अन्यदारे समितसूरयस्तत्राजग्मुः × तैः नदी उक्ता - हे कृष्णे! वयं पारं गिगमयिषन्ति × ततो नद्याः द्वे कूले एकत्र मिलिते × जातः विस्मयः लोके × गृहीता दीक्षा कुलपतिना सपरिवारेण × सा ब्रह्मशाखा प्रसिद्धा।

(506-7) ★ 16. मूलकर्म - धनः श्रेष्ठी × धनप्रिया भार्या × पुत्री सुन्दरी × सा च भिन्नयोनिका × सापित्रा

PAGE :
DATE : / /

कस्यापीश्वरपुत्रस्य परिणयनाय दत्ता × भ्रातुः चिन्ता बभूव यदि भर्त्रा भिन्नयोनिका ज्ञास्यते ततः तेनोज्झित्वा दुःखं अनुभविष्यति × अत्रान्तरे कोपि साधुः आगतः × तेन पृष्टा सती वृत्तानं कथितवती × साधुना आत्मप्रत्यौषधं पानौषधं च तस्यै प्रदत्तं × जाता अभिन्न योनिका

→ चन्द्रवदना पुरी × धनदत्तः सार्थवाहः × चन्द्रमुखा भार्या × तयोः कन्यकाः प्रवृत्तः × धनदत्तेन कस्यापीश्वरस्य पुत्री वृता × ज्ञातः वृत्तान्तः चन्द्रया × अत्रान्तरे जङ्घापरिजितनामा साधुः आगतः × दृष्टा तेन अधृतिं कुर्वती सा × पृष्टा सती सपत्नीव्यतिकरं अकथितवती × साधुना समर्पितं औषधं × भणिता च कस्यापि भक्तस्य मध्ये देयं येन सा भिन्न-योनिका भवति, ततः स्वभर्त्रे निवेदयेः, येन सा न परिणीयते × तया तथैव कृतं × न परिणीता सा भर्त्रा।

→ दोष- (i) भिन्न योनि वाली अभिन्नयोनि होने पर यावज्जीव मैथुन प्रवृत्ति का अधिकरण (ii) भिन्नयोनि वाली को पता चलने पर साधु प्रति द्वेष (iii) ऊढ़ाह।

(508-9) ★ विवाह विषयक मूल्यकर्म — कोई साधु घर में पुत्री या पुत्र को यौवन प्राप्त देखकर उनके माता-पिता को विवाह करने की सलाह दे या विवाह कराए, वह।

(510-1) ★ गर्भाधान विषयक मूल्यकर्म - संपुरं नगरं × सिंहपुरराजः × द्वे पत्न्यौ - शृङ्गारप्रतिः जयसुन्दरी × शृङ्गारप्रतेः गर्भाधानं बभूव × सुन्दरी मात्सर्यवशात् अधृतिं कुर्वती दृष्टा गृहे आगतेन साधुना × वृत्तान्तं श्रुत्वा साधुः तस्यै गर्भाधानाय औषधं एकं, अपरं सपत्न्याः गर्भशातनम् दत्तवान्।

(512) ★ सभी मूल्यकर्म के दोष - (i) विवाह में षट्काय विराधना (ii) असतयोनि और गर्भाधान में कामप्रवृत्ति, मैथुन संतति (iii) गर्भपात में प्रवचन प्रत्यनीक (iv) असतयोनि में भोगान्तराय कर्म

उक्तं द्वारत्रयम् | उक्ताः उत्पादना दोषाः

(513) ★ विशुद्ध आहार का ग्रहण होता है इसलिए अब ग्रहणैषणा।

(514-5) ★ ग्रहणैषणा - 10 दोष में से शंकित और भाव अपरिणत, ये दो दोष साधु द्वारा, बाकी 8 गृहस्थ द्वारा होते हैं।

(516) ★ गृहणैषणा निक्षेप -

(517-9) ★ द्रव्यैषणा ग्रहण एषणा में दृष्टांत - विशालशृङ्गः पर्वतः x तत्र एकस्मिन् वनखण्डे वानरयूथं अभिरमते x तत्रैव द्वितीये वनखण्डे हृदे मध्यभागवर्तिनि शिशुमारः अवतिष्ठते x से पानीयाय आगतं मृगादिकं भक्षयति x एकदा प्रथमं खण्डं अपगत-पुष्पफलं अवलोक्य वनखण्डस्य गवेषणाय वानरयुगलं यूथपतिना प्रेषितं x तेन यूथपस्य निवेदितं x यूथपतिः तत्र गतवान् यूथेन सह x तत्र प्रविशन्ति स्वपदानां पदानि दृश्यन्ते, न निर्गच्छन्ति x ततो यूथाय तेन कथितं - भाङ्ग्रपिबथ पानीयं x एवं चोक्ते यैः तद्वचः कृतं ते सुखं विहरन्ति, इतरे विनष्टाः।

(520) ★ 10 दोष - 1. शंकित 2. प्रक्षिप्त (सचित्त मिश्र) 3. निक्षिप्त 4. पिहित 5. संहृत 6. दायक 7. उन्मिश्र 8. अपरिणत 9. ~~लिप्त~~ लिप्त 10. छर्दित।

(521) ★ 1. शंकित - गोचरी में उद्गमादि दोष की शंका होना। 2 पक्ष - ग्रहण करते समय, भोजन करते समय शंका। चतुर्भंगी - (i) ग्रहणे भोजने (ii) ✓ × (iii) × ✓ (iv) ×× → चौथा भांगा शुद्ध

→ प्रथम तीन भांगे में 25 दोष की संभावना - 16 उद्गम (1 से 9 एषणा दोष प्रक्षितादि) आधा से रहित ~~अल्प~~ अल्पप्रमाणे शुद्ध आहार गवेषता साधु अशुद्ध आहार घृतमिश्रता से कभी ग्रहण करे तो भी वह शुद्ध है। वह आहार केवली भी वापरते हैं, अन्यथा श्रुतज्ञान अप्रमाण होता और श्रुत अप्रमाण होनेपर चारित्र, दीक्षा, वेष का अभाव।

(524) ★ प्रथम भांगे का संभव - कोई साधु दोष की शंका होने पर भी त्वरा से नहीं परठे और भोजन करते समय भी शंका सहित वापरे।

PAGE :
DATE : / /

(527) ★ दूसरे भांगे का संक्षेप- कोई साधु लज्जा से शंका सहित गोचरी लेवे किंतु लेने के बाद संघाटक द्वारा कैसे भी स्पष्टता होने से निःशंक बापरे।

(528) ★ तृतीय भांगे का संक्षेप- कोई साधु गोचरी निःशंक लेवे फिर गुरु के पास आलोचना सुनने पर अन्य संघाटक द्वारा भी वही गोचरी लाई हुई देखे। देखकर सोचे कि यह आधाकर्म हो सकता है।

(529) ★ पूर्वपक्ष- यदि शंका ही दोष करने वाली है, तो शुद्ध भक्त भी शंका सहित अशुद्ध होगा और अशुद्ध भी शंका रहित होने से शुद्ध होगा?

(530) → उत्तर- 'यह शुद्ध ही है' या 'यह अशुद्ध ही है' इससे अत्यंत शंका वाला अविशुद्ध परिणाम शुद्ध आहार को भी अशुद्ध और शंका रहित विशुद्ध परिणाम अशुद्ध को भी शुद्ध करता है, श्रुतज्ञानस्य प्रामाण्यात्। उक्तं शङ्कितद्वारम्

(531-2) ★2. **प्रक्षित/प्राक्षीपत** = मिश्रित होना सचित्तादि से।

→ ~~3 प्रकार~~ — प्रक्षित

सचित्त — अप्काय, वनस्पति — अचित्त — गर्हित, इतरत — पृथ्वीकाय

(533) ★ (534) सचित्त पृथ्वीकाय प्रक्षित — 2 प्रकार (i) शुष्क - शुष्क बारीक रेती-धूल आदि से देय, पात्र, या हाथ मिश्र हो (ii) आर्द्र - आर्द्र पृथ्वी से मिश्र

(535) ★ सचित्त अप्काय — 4 प्रकार (i) पुरः कर्म = साधु दान के पहले हाथ धोना वि. (ii) पश्चात्कर्म = साधु दान के बाद हाथ धोना वि. (iii) सस्निग्ध = थोड़े पानी से गीले हाथ (iv) उदकार्द्र - स्पष्ट पानी से गीले दिखते हाथ वि.।

(536) ★ → सचित्त वनस्पतिकाय = (i) प्रत्येक वनस्पति से खरड़े हाथ वि. (ii) अनन्तकाय के कच्चा टुकड़े से

(537) ★ तेजो, वायु, त्रसकाय से सचित्त, अचित्त मिश्र या आर्द्रकप में प्रक्षित संभव नहीं है क्योंकि लोक में सचित्त-मिश्र तेजो आदि के संसर्ग में प्रक्षित शब्द प्रवृत्ति नहीं है।

सचित्त तेजो आदि से पृथ्वीकाय में अन्तर्भाव हो जाएगा, अचित्त वायु में मृक्षित संभव नहीं है।

(536) ★ सचित्त से म्रक्षित में कल्प्याकल्प्य विधि - चभांगे - ७ हाथ म्रक्षित मात्रक म्रक्षित हो (जिन भजन संवाद दो)
(i) ✓ × (ii) × ✓ (iii) × × (iv) × × | चौथा भांगा कल्प्य, तीन अकल्प्य।

(537) ★ सचित्त में गर्हित = मांस आदि लोक में निंदित पदार्थों से म्रक्षित
इतर = घी आदि लोक में अनिंदित पदार्थों " " |
कल्प्याकल्प्य विधि - वही चभांगे | ~~इतर म्रक्षित कल्प्य~~, गर्हित म्रक्षित अकल्प्य, चौथा भांगा कल्प्य, तीन अकल्प्य।

(538) ★ अगर्हित म्रक्षित में विशेष - घी आदि से म्रक्षित हो और मक्खी, कीड़ी वि. जीव से संसक्त हो तो अकल्प्य, संसक्त रहित हो तो कल्प्य।
→ जिनकल्पिक - ऊपर प्रमाणे | → स्थविरकल्पिक - यतनापूर्वक से ग्रहण करते हैं।

(539) ★ गर्हित - मांस, वसा, खून, दारु से म्रक्षित अकल्प्य | मधु - स्थाडिल से म्रक्षित अकल्प्य। उक्तं म्रक्षित द्वारम् |

★ 3. निक्षिप्त = देय वस्तु अन्य वस्तु पर रखना | 2 भेद (अपवाद) = स. इ. मि. |
दोनों के 2 भेद - अनंतर, परंपर |
सामान्य से 3 प्रकार - स. इ. मि. → 3 चतुर्भंगी
① सचित्ते सचित्तं, ~~सचित्ते~~ मिश्रे सचित्तं, ~~मिश्रे~~ मिश्रं, मिश्रे मिश्रं
② सचित्ते स, अचित्ते स, स अ, अ अ
③ मिश्रे मिश्रं, अचित्ते मिश्रं, मिश्रे अचित्तं, अ अ

PAGE :
DATE : / /

(540) ★3. **निक्षिप्त** = अन्य वस्तु पर रखी हुई देय वस्तु। 2 पक्ष - आधार और देय वस्तु।

निक्षिप्त
सभी स.अ.मि. — 6 काय
(A) 3 चतुर्भंगी — अनंतर — परम्पर — (B) 36 भांगे
12 भांगे

(540) (A) आधार और देय वस्तु - दोनों सचित्त, अचित्त और मिश्र हो सकती है। इससे 3 चतुर्भंगी बनेगी (i) सचित्ते सचित्तं, सचित्ते मिश्रं, मिश्रे सचित्तं, मिश्रे मिश्रं (निक्षेप से)
(ii) सचित्ते सचित्तं, अचित्ते सचित्तं, सचित्ते अचित्तं, अचित्ते अचित्तं
(iii) मिश्रे मिश्रं, अचित्ते मिश्रं, मिश्रे अचित्तं, अचित्ते अचित्तं

(541-2) (B) आधार और देय वस्तु - पृथ्वी वि. 6 संमत है। इसमें
पृथ्वीकाय का निक्षेप 6 पर = 6 भांगे। इस प्रकार 6 काय का निक्षेप 6 काय पर 6×6=36 भांगे। सभी के 2 प्रकार - अनन्तर, परंपर। अग्निकाय पर निक्षेप 7 प्रकार से (यह आगे 549 गाथा में है)

(543) → पृथ्वीकाय के निक्षेप के 6 भांगे में से (i) पृथ्वीकाय: पृथ्वीकाये, यह भांगा स्वस्थान, बाकी परस्थान। इसी प्रकार अन्य छह वि. में भी एक-एक भांगा स्व, बाकी 5 परस्थान

(A) में पहली चतुर्भंगी में पहला भांगा सचित्ते सचित्तं, यहाँ ऊपर प्रमाणे हुआ, यदि (36 भेद)
→ (B) में आधार और देय वस्तु सचित्त हो तो। इसी प्रकार (B) में आधार और देय वस्तु क्रमशः सचित्त और मिश्र हो तो दूसरा भांगा (36 भेद)।

(544) इस प्रकार प्रथम चतुर्भंगी में 36×4 = 144 भेद।
तीनों चतुर्भंगी में 144×3 = 432 भेद।

(545) ★ कल्प्याकल्प्य विधि - प्रथम चतुर्भंगी, दूसरी और तीसरी चतुर्भंगी के प्रथम 3 भांगे अकल्प्य।
→ द्वितीय और तृतीय चतुर्भंगी के 6ठ्ठे भांगे अनंतर या परंपर कल्प्य।
→ द्वितीय-तृतीय चतुर्भंगी के तीसरे भांगे में अनन्तर अकल्प्य, परंपर यतना से कल्प्य। (गा. 55 T)

(546) ★ अन्य प्रकार से स.अ.मि. की चतुर्भंगी - पहला पक्ष = सचित्तमिश्र, दूसरा पक्ष = अचित्त।
(i) सचित्तमिश्रे सचित्तमिश्रं (ii) अचित्ते सचित्तमिश्रं (iii) सचित्तमिश्रे अचित्तं
(iv) अचित्ते अचित्तं)

→ यहाँ भी 6 काय के प्रत्येक भांगे में 36 भांगे, सर्वसंख्या = 432 भांगे।

→ 432 भांगा कल्प्य, पृथक् 3 अकल्प्य।

(547) ★ 'सचित्तमिश्रे अचित्ते' इस भांगे में अनंतर परंपर, छह काय के दृष्टांत –

(548) ⓐ पृथ्वी – द्र. – पक्वान्न मंडक वि. सचित्त पृथ्वी पर सीधे रखे

प. – स.पृ. के ऊपर थाली वि., उसमें मंडक वि.

ⓑ स्नेह – द्र. – स्नेहन वि. सचित्त पानी पर, प. – स्नेहन वि. जल में नख में रखे

ⓒ अग्नि – प्रकार – (क) विध्यात = जो अग्नि स्पष्ट खबर न पड़े किंतु ईंधन डालने पर भड़के

(548-50-51) (ख) मुर्मुर = बीं पीये कण्डे के अग्निकण, (ग) अंगार = ज्वालारहित अग्नि (घ) असप्राप्त – चूल्हे पर चढ़े बर्तन को ज्वाला प्राप्त न होती (स्पर्शन न हो) (ङ) प्राप्त = ज्वाला बर्तन को छूती (च) समज्वाल = जो अग्नि बर्तन के कान तक आए (छ) व्युत्क्रान्त = जो अग्नि बर्तन के भी ऊपर जाए।

→ द्र. – अग्नि पर मंडक वि., प. – अग्नि पर बर्तन में मंडक

(554-55) ★ अग्नि पर रखे पिठर में से इक्षुरस ग्रहण की 4 शर्तें – (i) कड़ाई आस-पास मिट्टी से लेपी हो (ii) इक्षुरस वि. अनति उष्ण होना चाहिए (iii) नीचे गिरना नहीं चाहिए (iv) चम्मच पिठर को अड़ना नहीं चाहिए। इन 4 पदों के 16 भांगे ।।।।, ।।।ऽ, ।।ऽ।, ।।ऽऽ, ।ऽ।।, ।ऽ।ऽ, ।ऽऽ।, ।ऽऽऽ, ऽ।।।, ऽ।।ऽ, ऽ।ऽ।, ऽ।ऽऽ, ऽऽ।।, ऽऽ।ऽ, ऽऽऽ।, ऽऽऽऽ। । = ऋजु (सीधा) ऽ = वक्र (आड़ा)

पहला भांगा कल्प्य, बाकी अकल्प्य।

(552-3) → 4 शर्तों के कारण – (i) मिट्टी का लेप – यदि कोई छिद्र गिरे तो वह तेजस्काय में नहीं गिरे, मिट्टी में गिरे (ii) अत्युष्ण रस वि. – आत्म और संयम विराधना – जिस भाजन में अत्युष्ण ग्रहण करे तो भाजन गरम होने से साधु जले अथवा चम्मच गरम होने से दात्री जले, अथवा अत्युष्ण कष्ट से देते हुए नीचे गिरे तो इक्षुरस वि. की हानि (iii) एकदम गरम पात्रा वसति में लाकर साधु नीचे रखे, यदि थोड़ा जोर से

रखे तो पात्र टूटने पर ६काय विराधना (i) नीचे नहीं गिरे - दर्शित दोष (ii) पक्षी पिंजरे को उड़े नहीं - पिंजरा मुख भी छोटा होना चाहिए जिससे चमड़ा छूटे नहीं → चमड़ा उड़ने पर मिट्टी का भाजन टूटने पर तेजस्काय विराधना वि.।

(556) ② वाउकाय - अ- प.- हवा भरे हुए वस्ति दृति वि. पर मुंह वि.

(557) ③ वनस्पति - अ.- हरित वि. पर पुड़िया वि. रखा हो, प.- हरित पर रहे घाणी वि. में पुड़िया रखा हो

④ त्रस - अ.- चैत्य वि. के ऊपर पुड़िया वि. प.- चैत्य वि. के पर भाजन में मोदक वि.

→ सभी जगह अनन्तर निक्षिप्त अकल्प्य, परंपर में संघट्टा वि. न हो ऐसी यतना से कल्प्य। उक्त निक्षिप्त द्वारम्

(558) ★ 4. पिहित = ढँका हुआ। यहाँ भी गाथा ५५० की तरह स.प्र.पि. की ३ चतुर्भंगी।

पहली चतुर्भंगी अकल्प्य, दूसरी - तीसरी के पहले उभांगे अकल्प्य, दूसरी तीसरी के चौथे भंगो की कल्प्याकल्प्य विधि गा. ५६२ में। दूसरी तीसरी के विधेय द्वि भाग में अनंतर अकल्प्य परंपर कल्प्य (गा. ५६१)

(559) ★ ६काय में अनंतर, परंपर के ५३२ भेद गा. ५५५-५३ प्रमाणे।

→ अनंतर-परंपर प्राणि निक्षिप्त से अलग। स.पृथ्वी से ढँकी हुई हुए मंडक, अ.पृथ्वीकाय अनंतर पिहित और स.पृथ्वी से ढँके हुए पिठर वि. में मोडक परंपर पिहित। इसी प्रकार अप्काय में।

(560-1) ★ → थाली वि. में संस्वेदिम के बीच में अंगारे रखकर हिंग वि. की वास दी जाती है। तब अंगारे से नीचे पड़े हुए अनंतर पिहित, चने वि. आग में डाले हुए अनंतर पिहित, अंगारे से ढँके ऊपर रहे पिठर वि. में परंपर पिहित। → यत्र अग्निः तत्र वायुः, अग्नि समान ही वायु भी जानना

→ वनस्पति में फल्ले के नीचे पड़े मंडक अनंतर, छब्बक के ऊपर फल्ले पड़े हो तो परंपर। वस्ति, दृति वि. से ढँका हुआ

→ त्रस में कीड़ी की पंक्ति से अनंतर पिहित, कचुआ के नीचे भाजन में मोडक परंपर।

(562) ★ अचित्त अचित्त की कल्प्याकल्प्य विधि - चतुर्भंगी (i) शुरु दुयं गुरुणा पिहितं, (अनंतर अकल्प्य, परंपर यतनया कल्प्य)

(ii) गुरु लघुना (iii) लघु गुरुणा (iv) लघु लघुना / प्रथम तृतीय अकल्प्य, गुरु द्वय उठाने में पैर वि. टूटने का संभव होने से / द्वितीय-तुरीय कल्प्य, यदि देय वस्तु का आधार गुरु हो तो चम्मच से दे सकते हैं / उक्तं पिहितद्वारम् /

(गा.562) ★5. संहृत = दात्री जिस भाजन से देती है, उस भाजन में अन्य अयातव्य वस्तु स.प्र.मि. भी होती है, वह अयातव्य वस्तु दात्री निकालकर बाहर रखती, रखने का आधार भी स.प्र.मि. हो सकता है, इस क्रिया को संहरण कहते हैं और अदेय वस्तु + डालने का आधार, इन दो पक्ष से गा. 540 की तरह 3 चतुर्भंगी / प्रथम चतुर्भंगी अकल्प्य, द्वितीय-तृतीय में प्रथम 3 भांगे अकल्प्य, चौथे भांगे में गा. 566 में / तीसरे भांगे में अनंतर अकल्प्य, परंपर कल्प्य (गा. 565) /

(गा.564) ★ गा. 544-45 प्रमाणे 6 काय के 432 भेद /

(565-6) ★ ~~अन तीसरे~~ तीसरे भांगे में अनंतर - सदेय सचित्त पृथ्वी वस्तु, सचित्त पृथ्वी पर रखे परंपर - ... सचित्त पृथ्वी पर थाली में इस प्रकार 6 प्रकाय वि. की जानना / अनंतर अकल्प्य, परंपर यतनया कल्प्य /

(567) ★ 'अचित्ते अचित्तं' की कल्प्याकल्प्य विधि - चतुर्भंगी (i) शुष्के शुष्कं, (ii) शुष्के आर्द्रं (iii) आर्द्रे शुष्कं (iv) आर्द्रे आर्द्रं

(568) ★ इन चार भांगों में प्रत्येक भांगे में 1-1 चतुर्भंगी - शुष्के शुष्कं में चतुर्भंगी ⓐ स्तोके स्तोकं ⓑ स्तोकं बहु ⓒ बहुके स्तोकं ⓓ बहुके बहु, इस प्रकार (ii) (iii) (iv) में भी / 4×4 = 16 भांगे /

(569) ★ कल्प्याकल्प्य विधि - शुष्क आर्द्र के चारों भांगों में ⓐ स्तोके स्तोकं ⓑ ~~स्तोकबहुके~~ ⓒ स्तोकं कल्प्य / बाकी ⓑ ⓓ अकल्प्य /

(570-1) ★ ⓑ ⓓ भांगे में दोष - (i) भारवाली वस्तु ऊठाने पर दात्री को पीड़ा, (ii) साधु पर पीड़ा पर ध्यान नहीं देता, ऐसी निंदा /

PAGE :
DATE : / /

(ii) यदि भारवाला भाजन शस्त्र हो तो कथंचित् दुःखने पर दात्री या साधु जल जाए
(iii) भाजन दुःखने पर अप्रीति (iv) द्रव्य व्यवच्छेद (v) बड़ा भाजन दुःखने पर बहुत भस्मादि
दुःखने पर पृथ्वीकाय वि जंतु विनाश। उक्तं संहृतद्वारम्

अब दायक - ५० प्रकार के दोष। पहले उनका स्वरूप, फिर दोष, फिर अपवाद (कोई)

(572-7) ★ 6. I (i) बाल = ८ साल से कम उम्रवाले। (ii) वृद्ध = ७० या मतान्तरे ६० वर्ष से अधिक। (iii) मत्त = शराब पीया हुआ। (iv) उन्मत्त = ग्रह-देव-रेवी से दूषित गृहीत। (v) वेपमान = कंपता हुआ।
II III IV
(vi) ज्वरित = बुखार वाला (vii) अंध (viii) पगलित = कोढ़ वाला (ix) आरुढ = चप्पल वाला
(x) हाथ में बेड़ी वाला (xi) पैर में बेड़ी वाला (xii) हाथ-पाव रहित, छेदे हुए (xiii) नपुं. (xiv) गर्भवती
(xv) बाल वत्सा (xvi) भोजनं कुर्वती (xvii) दध्यादि मथनती (xviii) चने भुंजती (xix) गेहूँ वि. पीसती (xx) च्यावत्य वि. इमानदस्ते में कूटती (xxi) शिला पर तिलादि को मसलती (xxii) रुई पींजती (xxiii) कपास का हर्तनि करती (पीसना, भुरा करना) (xxiv) सूत कातती (xxv) रुई हाथ से बारबार अलग करती (xxvi) काय युक्त हाथवाली (xxvii) काय भूमि पर डालकर दे (xxviii) काय पर चलकर दे (xxix) काय का शरीर से संघट्टा करती (xxx) काय का नाश करती (xxxi) संसक्त द्रव्य से खरडाए हाथवाली। (xxxii) संसक्त द्रव्य से खरडाए भाजन वाली (xxxiii) बड़े-बड़े पिठर में से दे (xxxiv) बहुत लोगों संबंधी द्रव्य को देती (xxxv) चोरी का देती हुई (xxxvi) उपरितिकादलिंदादि का स्थापन कर दे (xxxvii) सप्रत्यपाया = जो दात्री अपाय सहित हो जैसे काँटेवि। (xxxviii) अन्य साधु के लिए स्थापित द्रव्य दे (xxxix) 'इत्थं अकल्प्यं' एवं जानानाऽपि ददती आभोगेन (xl) अनाभोगेन अशुद्धं ददती।

→ यहाँ संसक्त आदि कुछ दोष प्रक्षितादि द्वार में आ गए हैं फिर भी दायक दोषों को एक ही जगह दिखाने के लिए यहाँ रखा है।

(578) ★ बालादि २५ दोष बड़े प्रयोजन होने पर कल्प्य भी हो सकते हैं। किंतु बद्ध काय-अग्रहस्तादि १५ दोष (२६-४०) हमेशा अकल्प्य।

'श्रमणेभ्यो भिक्षां दत्ता' इति

(579) ★ ~~बाल~~ बाल दोष - कापि माता पुत्रीं ~~कथयित्वा~~ कथयित्वा क्षेत्रं जगाम × आगतः साधुः तापरायत्तः बालिकां मुग्धतरां अवगत्य 'पुनर्देहि पुनर्देहि' इति ~~म~~ समस्तोपि सकलं भक्तं अगृह्णत् × अपराह्णे आगता जननी पुत्रीं कथयति - देहि मह्यं भक्तं, सा उवाच - सर्वं अपि साधवे दत्तं एवं सा यद्यत् याचते 'सर्वं साधवे दत्तं' इति ब्रवीति × सा श्राद्धिका रुष्टा सती अपवदति - त्वया ~~स्व~~ सर्वं दत्तं ? सा ब्रूते - स साधुः भूयो भूयः अयाचत ततो मया अदायि × ततः सा माता सूरीणां पार्श्वे अगमत् अकथयच्च वृत्तान्तं × तस्याः महता शब्देन जनः भीतितः × सर्वे निन्दन्ति ✗ (i) निंदा (ii) उड्डाह

(580) ★ स्थविर दोष - (i) वृद्ध की लार टपके तो लोक में जुगुप्सा (ii) हाथ कंपे तो नीचे गिरे (iii) स्वयं वृद्ध नीचे गिरे (iv) वृद्ध को रोग हो तो उसके पुत्रादि घरके स्वामी को द्वेष हो

(581) ★ मत्त - उन्मत्त दोष - (i) मत्त कभी साधु का आलिंगन करे (ii) अपमान कर मारे भी (iii) पात्र ✗ तोड़े (iv) वमन करे तो जुगुप्सा। उन्मत्त में वमन सिवाय 3 दोष।

(582) ★ → वेपमान दोष - (i) वस्तु नीचे गिरे (ii) थाली आदि उसके हाथ से गिरे, टूटे → वेपित दोष - वेपमान के 2 (iii) ज्वर संक्रमण साधु में हो (iv) लोक में उड्डाह

(583) ★ → अंध दोष - (i) उड्डाह (ii) अंध ~~म~~ नहीं देखने से भूमि पर ✗ काय विराधना करे (iii) अंध स्वयं नीचे गिरे (iv) थाली बिःटूटे गिरने से (v) देय वस्तु पात्र के बाहर डाले।

→ गलते हुए कोढ़ वाला दोष - साधु में कोढ़ का संक्रमण।

(584) ★ → पादुका रूढ दोष - (i) चप्पल से कभी नीचे गिर जाए

→ हाथ - पैर बंधे हुए का दोष - (i) उसे दुःख होगा (ii) बंधन के कारण वह शौच नहीं कर सकता है, इसलिए उसके हाथ से होने में लौकिक जुगुप्सा।

→ छिन्नकर दोष - (i) लोक जुगुप्सा (ii) वस्तु या ✗ उसके भाजन का पतन

→ छिन्नपाद " - (i) पैर छिना चलता हुआ वह गिर सकता है, जिससे भूमिआश्रित जीवों की, उसकी स्वयं की विराधना

(584) ★ → नपुं. (i) नपुंसक का अतिपरिचय हो तो (ii) नपुं. या साधु को ~~केश~~ वेदोदय (iii) मैथुन सेवन से कर्मबंध (iii) लोकजुगुप्सा (iv) लोक में साधु पर शंका। अभीक्ष्ण शब्द लिखने से शायद परिचय न होने पर भिक्षा ग्रहण में दोष का अभाव।

(585) ★ → गर्भवती (i) उठने या बैठने में गर्भ को दुःख

→ बालवत्सा (i) यदि शिशु को भूमि पर रखकर भिक्षा दे तो बिडालादि शिशु को मारे, खाजाए

→ (ii) भिक्षा देने में आहार से खरडाए हाथ कर्कश हो जाने से बालक को वापस उठाए तो उसे पीड़ा आदि

(587) ★ → भोजनं कुर्वती (i) भिक्षा देने के लिए हाथ धोए (ii) हाथ न धोए तो लोक जुगुप्सा

→ दध्यादि मथ्नती (i) यदि दध्यादि संसक्त हो तो रसजीवों का वध

(588) ★ → पेषण से लेकर कर्तन तक (14-44) (i) अप्-बीज का संघट्टा (ii) पीसते हुए तल बिकोई सचित्त दाने उसके नाखून में, हाथ में लगना संभव है (iii) भिक्षा देकर वापस पीसने के लिए हाथ धोए (iv) चने भूंजने में - भिक्षा देते हुए यदि देर लगे तो चने, गेहूं वि. अत्यजार।

(589-90) ★ → षट्काय का व्यापार - (25-30) पृ.- भूम्यादि खनन्ती, स्नप्-स्नान्ती, वस्त्राणि प्रक्षालयन्ती, वृक्षादि सिञ्चन्ती, तेउ.- अग्निं ज्वलयन्ती, वाउ.- सचित्तवायुवृतं वस्त्यादिकं इतस्ततः प्रक्षिपन्ती, वन.- पुष्पफलादेः छेदः, ~~छो~~ तेषां खण्डानां शोषणाय आतपे प्रोचनं विशारणं तण्डुलमुद्गादीनां शोधनं कुर्वती, त्रस.- प्रत्यादीन् त्रसकायान् भिन्दती।

एवं षट्कायजीवान् आरम्भमाणा तस्तान्न कल्पते।

(591) ★ मतान्तर - कुछ आचार्य जो स्त्रियाँ कान या सिर पर बेर आदि फल या पुष्प वि. ~~ह~~ लगाती है, उनके हाथ से भी अकल्प्य मानते हैं।

(592) ★ अन्य आचार्य षट्कायउपग्रहस्त से कल्प्य मानते हैं, वह गलत है।

(593) ★ → संसक्तद्रव्य से खरडे हाथ या भाजन दोष - (i) हाथ वि. पर लगे जीव का नाश (ii)

→ (31) बड़े पिठर दोष - बड़े भाजन कोठी वि. उठाने या हिलाने से कीड़ी, मकोड़ा आदि जीव का व्याघात क्योंकि - (31-32)

बड़े भाजन रोज नहीं किंतु कभी-२ ही उठाए जाते हैं।

(594) ★ → साधारण द्रव्य दोष - अनिसृष्ट दोष पूर्व में कहा

→ चोरी का या नौकर-बहनादि का द्रव्य दोष - ग्रहण बंधन ताड़नादि।

(595) ★ → प्राभृतिका बलि वि. का स्थापन कर दे - प्रवर्तनादि।

→ सापाय - अपाय उपकार @ तिर्यग् - गाय वि. ⓑ ऊर्ध्व - वृक्ष के काष्ठ वि ⓒ अध - सांप कर वि.

इस प्रकार अपाय संभव होने पर अकल्प्य।

→ साध्वनिमित्ते स्थापित द्रव्य - अक्तापान दोष।

* ग्लानादि संबंधी जो साधु होवे, वह (दाता को स्पष्ट करे कि यह ग्लानादि के लिए है) ग्लानादि को समर्पित करे, यदि ग्लानादि न ले तो दात्री को वापस दे, यदि यात्री कहे कि आप वापरलो, तो स्वयं वापरे।

(596) ★ → आभोग-अनाभोग - आधाकर्मादि दोष।

(597) ★ → बाल दोष में भजना - माता के समक्ष बाल दे तो कल्प्य, यदि बहुत ज्यादा दे तो माँ (और माँ कहे कि 'दोगा, दोगा') पास में हो, तो कल्प्य।

(598) ★ → स्थविर में भजना - वृद्ध यदि कंपता हुआ अन्य द्वारा धारण किया हो अथवा दुर्बल शरीर वाला हो

→ मत्त - यदि वह आढ्य हो, पूरे नशे में न हो और आसपास कोई देखता न हो तो।

(599) ★ → उन्मत्त - वह शुचि और अशुचि हो तो।

→ वेपमान - यदि कंपते-कंपते भी नीचे न गिरता हो तो

→ ज्वरित - यदि उस समय ज्वर न हो तो

→ अंध - यदि वह आढ्य हो और अन्य द्वारा पकड़ा हुआ हो तो)

(600) ★ → कुष्ठी - गोपाकार ~~सब~~ सदृश हो और नख से खुजाने पर भी चेतना की संवित्ति न हो, ऐसा पण्डलप्रसूतिकुष्ठ रोग वाले कुष्ठी से ही अन्य कोई देखता न हो तो कल्प्य वरना अंधकार्य से अकल्प्य।

PAGE :
DATE : / /

→ पादुकारूढ एक ही जगह पर खड़ा होने के कारण विशेष होने पर।
→ पाव वंदेदुए - (i) यदि चलने में इसे कोई पीड़ा न हो तो, (ii) यदि चलने में पीड़ा हो तो नीचे बैठ-बैठ दे और कोई देखता न हो तो कल्पय।
→ हाथवंदे दुए - भिक्षा देने के लिए समर्थ ही नहीं है तो प्रजना भी नहीं है।
→ भिन्नकर - कोई देखता न हो तो
→ भिन्नपाए - बैठ-बैठ दे तो और कोई देखता न हो तो
→ नपुं. - लिंगादि का भंगसेवक हो तो
(601) ★ → गर्भवती - प्रथम 8 मास में स्थविरकल्पी को कल्पय, 9वें मास में नहीं।
→ बालवत्सा - यदि मात्र स्तनपान ही करता हो तो स्थविरकल्पी को भी अकल्पय, यदि बालक आहार भी करता हो तो कल्पय।
→ भुञ्जना - मुह सूखा न हो और कवल मुह में न डाला हो, हाथ में ही हो तो।
→ भुंजती - सचित्त गेहूँ आदि कड़ाई में डाले हुए को भुंज कर नीचे उतार दिए हो और अन्य कुछ हाथ में न हो, तभी साधु पधारे तो।
→ दलयन्ती - सचित्त मूँग आदि को चक्की में डालकर छोड़ दिया हो और तभी साधु जाए
→ सचित्त मूँग वि. भुंजती या दलयती हो तो।
→ कण्डयन्ती - कंडन करने के लिए मुशल उठाया हो, मुशल पर बीज न लगा हो, तभी साधु पधारे और अनुपाय स्थान में मुशल रखकर दे तो।
(602-3) ★ → पीसती - यदि पीसने का काम पूरा हो गया हो या सचित्त पीसती हो तो।
→ मथ्नती - असंसक्त दही वि. से मंथन करती हो।
→ कर्त्तती - सूत कातने में सूत को स्फोट करने के लिए कोई लाख और जौ पर शंख चूर्ण लगाकर सूत कातती है। यदि शंख चूर्ण से हाथ खरड़े न हो तो। लेकिन चूर्ण से हाथ खरड़े हो किंतु यदि हाथ धोए बिना दे तो।

→ कषास का उद्वर्तन करती - यदि असंसक्त कषास हो तो और घर्षण न करती हो तो।
→ पींजती, मर्दन करती - यदि पश्चात्कर्म न हो तो

(604) ★ २५-५० दायक दोष में अपवाद नहीं होता, नियमात् ग्रहण।

(605) ★7. उन्मिश्र = दो वस्तु मिश्र करके दे। दो पक्ष - दोनों ~~मिश्र~~ होने वाली वस्तु। उक्त दायकद्वारम्
(एक देय और दूसरी अदेय eg. ओदन-दाधि)
दोनों उपकार की - स. अ. मि. / ग. ५० की तरह ३ चतुर्भंगी।
प्रथम चतुर्भंगी अकल्प्य, द्वितीय-तृतीय चतुर्भंगी में ~~चार~~ भांगे में भजना (ग. 608)
प्रथम ३ अकल्प्य।

(606) ★ दोनों वस्तु - ६काय हो सकती है। ५३२ भेद ग. ५५१-५ की तरह।

(607) ★ संहृत-मिश्र में और उन्मिश्र में अंतर -> पातत्य और अपातत्य वस्तु मिश्र कर दे eg. ओदन - दधि, यह उन्मिश्र; भाजन में रहे अपातत्य को निकाल्यकर दे वह संहृत।

(608) ★ द्वितीय तृतीय चतुर्भंगी के ~~चार~~ भांगे अचित्त-अचित्त में भजना -> संहृतद्वार प्रमाणे है। अचित्त-अचित्त में शुष्क और आर्द्र की चतुर्भंगी ->
(i) शुष्के शुष्कं (ii) शुष्के आर्द्रं (iii) आर्द्रे शुष्कं (iv) आर्द्रे आर्द्रं। एक-एक भांगे में अल्प-बहु की चतुर्भंगी -> ⓐ स्तोके स्तोकं ⓑ स्तोके बहुकं ⓒ बहुके स्तोकं ⓓ बहुके बहुकं।
4×4=16 भांगे। शुष्क-आर्द्र वाली चतुर्भंगी में ⓐ स्तोके स्तोकं ⓒ बहुके स्तोकं बहु
दो-दो भांगे कल्प्य बाकी अकल्प्य, दात्रीपीडादोषादि अभावात्।
उक्त उन्मिश्रद्वारम्।

(609) ★8. अपरिणत

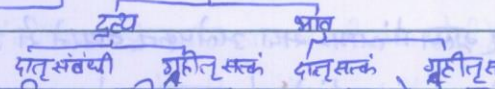

(610) ★ द्रव्य अपरिणत = सचित्तपणा नष्ट न हुआ हो तो वह द्रव्य अपरिणत। eg. दूध में दहीं मिलाया जमाने के लिए, जब दुग्धत्व नष्ट होकर दधित्व प्राप्त हो जाता है तब परिणत बाकी अपरिणत ऐसे ही पृथ्वीकायादि में सचित्तत्व नष्ट होने पर,

PAGE :
DATE : / /

→ यह अपरिणत जब दाता की सत्ता में हो तब दातृ सत्क, जब ग्रहीतृ की सत्ता में हो तब

(611) ★ दातृ सत्क भाव अपरिणत = भ्रातृ आदि में साधारण देय वस्तु देते समय ग्रहीतृ सत्क मन में ऐसा भाव हो जाए कि 'एक व्यक्ति संबंधी ही मैं देता हूँ, अन्य का नहीं', यह भाव से अपरिणत क्योंकि भाव की अपेक्षा से वह देयतया अभि अपरिणत है।

→ दातृ सत्क में भाई और स्वामि विषयक साधारण देय वस्तु हो सकती है।

→ साधारण अनिसृष्ट और दातृभाव अपरिणत में अंतर → साधारण अनिसृष्ट दायक के परोक्ष में किंतु दातृभाव अपरिणत दायक के समक्ष होता है।

(614) ★ ग्रहीतृ सत्क भाव अस्क अपरिणत = दो संघाटक साधु गोचरी छोड़ने घर में गए। छोड़ते समय दोनों में से कोई भी एक के मन में शंका हो और आहार परिणत न हो (मन में), यह ग्रहीतृ सत्क भा. अ.।

→ ग्रहीतृ सत्क भा. अ. साधु विषयक है।

→ दोष - शंकित होने से दोनों में कलहादि संभव है।

→ सभी प्रकार अपरिणत - अकल्प्य। युक्त परिणतद्वार में।

(613) ★★ ★9. लिप्त → लिप्त पानि लेप वाला द्रव्य जै. दही जिससे हाथ खरडाए।
(लेपकृत)
अलिप्त = लेप नहीं करने वाला द्रव्य जै. चावल, चने आदि।

→ साधु को हमेशा वाल्य - चने आदि अलेपकृत द्रव्य ही वापरना चाहिए, क्योंकि लेपकृत द्रव्य छोड़ने में हाथ धोना व. पश्चात् कर्म संभव है और धूपने के लिए संसक्त वस्त्रादि का ~~परिग्रह~~ संभव है।

→ अलेपकृत ग्रहण में लाभ - सदा अलेपकृत वापरने से आसक्ति नहीं होती।

(614-8) ★ → पूर्वपक्ष - लेपकृत ग्रहण में दोष के कारण अलेपकृत वापरना चाहिए तो अलेप के ग्रहण में भी दोष संभव होने से साधु का सदा वापरना नहीं चाहिए।
हमेशा उपवास करना चाहिए।

→ गुरु – सदा उपवास करने से साधु के संयम की हानि होती है।

→ पूर्वपक्ष – यदि हमेशा उपवास के लिए अशक्त हो तो 6 मास उपवास कर पारणे में आयंबिल कर अल्पेपकृत कर वापरे?

→ गुरु – सत्यं, यदि 6 मास भी अशक्य हो तो एक दिन कम 6 मास, अशक्य हो तो यावत् एक दिन उपवास कर पारणे में अल्पेपकृत लें, यह भी अशक्य हो और संयम योगों की हानि हो तो रोज अल्पेपकृत लें।
किंतु वर्तमानकाल में सेवार्त संहनन वाले जीवों में शक्ति (दृष्टी) नहीं होने से तीर्थंकरों ने अल्पेपकृत ग्रहण का विधान किया

(619-22) ★ → पूर्वपक्ष – महाराष्ट्र और कोशल देश के लोग मात्र-चावल खाकर ही जीते हैं तो मोक्ष के लक्ष्य वाले साधु मात्र-चावल खाकर क्यों नहीं जी सकते?

→ गुरु – भोजन पचाने के लिए जठराग्नि का उद्दीपन आवश्यक है और इसलिए 'आहार-उपधि-शय्या' यह त्रिक गरम होना आवश्यक है। साधुओं को तो ग्रीष्म काल में भी यह त्रिक शीत होती है – ⓐ गोचरी लाते-लाते ठंडी हो जाती है ⓑ सात में 1 बार वस्त्र धोने से प्रतिदिनता से ठंडी उपधि ⓒ शय्या तो आसपास अग्नि के अभाव में ठंडी। इसलिए उन्हें अजीर्ण-बुभुक्षा-मांद्य आदि दोष होने से विगइ वापरने की अनुज्ञा है किंतु विगई में तलादि ही उपयोगी है, गुल्यादि प्रयोजन में घी, सब्जी ले सकते हैं किंतु सामान्य से अल्पेपकृत और तलादि वापरना चाहिए। ↳ क्योंकि ये बहुलेपकृत और आसक्ति के जनक हैं।
गृहस्थों को यह त्रिक शीत काल में भी उष्ण होती है इसलिए उन्हें जरूर नहीं पड़ता

(623) ★ अल्पेपकृत द्रव्य – ओदनादि, खाखरे, सत्तु (जौ का आटा), उड़द, चने, बाल, तुवेर, मसूर मूँग आदि सूखे धान्य।

(624) ★ अल्पलेपकृत् द्रव्य → इनमें पश्चात्कर्म कभी होता है, कभी नहीं होता।
(625) ★ बहुलेपकृत् द्रव्य – दुग्ध, दही, घी, तेल, गुड का पानी, खजूर वि. रसाधिक द्रव्य जिनमें पश्चात् कर्म अवश्य होता है।
(626) ★ कल्प्याकल्प्यविधि – दाता संबंधी हाथ और भाजन संसृष्ट या असंसृष्ट संभव है और धोने के बाद द्रव्य सावशेष या निरवशेष संभव है। इस प्रकार 8 भंग। (आगे)

	द्रव्य	हाथ	भाजन	द्रव्य
		संसृष्ट	संसृष्ट	सावशेष
1.	उ.	✓	✓	✗
2.	उ.	✓	✗	✗
3.	उ.	✗	✓	✗
4.	उ.	✗	✗	✓

→ यहाँ 1, 3, 5, 7 भंग कल्प्य क्योंकि द्रव्य सावशेष होने से पात्री धोने के बाद सीधे ही भाजन खाली नहीं है किंतु हाथ और भाजन स्वयोगेन संसृष्ट होना चाहिए धोने से संसृष्ट नहीं होना चाहिए। उक्तं तिप्तद्वारम्।

(627) ★ 10. **छर्दित** = छोड़ा हुआ। दो पक्ष – छर्दित वस्तु और छर्दित का आधार।
(स्व. अ. मि.) (स. अ. मि.)
→ गा. 540 की तरह चतुर्भंगी। → गा. 541-5 की तरह 432 भेद।
→ सभी भंगों में छर्दित आहार अकल्प्य। छर्दित आहार कभी ग्रहण नहीं करना चाहिए
→ यदि ग्रहण करे तो आज्ञाभंग, अनवस्था, मिथ्यात्व और विराधना दोष।
(आत्म, संयम)

(628) ★ मधुबिंदु उदाहरण – वास्तपुरं× अग्निसेनो राजा× वास्तकः अमात्यः× एकदा घर्मघोष नाम्ना साधुः तस्य गृहं प्रविशन्× तस्य भार्या पायसभृतं स्थालं उत्पाटितवती× घृतबिंदुः भूम्यां पतितः× छर्दितदोषदुष्टा इयं भिक्षा इति कृत्वा स गृहात् निर्जगाम× वास्तकः चिन्तयति कथं स निर्जगाम? ×स यावत् चिन्तयति तावत् मक्षिकाः बिन्दौ अशिश्रियन्× तासां भक्षणाय गृहगोधिका धाविता× गृहगोधिकावधाय सरटः धावितः× सरटभक्षणाय धाविता मार्जारी× तस्याः वधाय श्वा धावितः प्रायूर्णकः श्वा× तस्य प्रतिद्वन्द्वी धावितः वास्तव्यः श्वा× द्वयोः शुनोः कलहोऽभूत्× स्वस्वस्वपक्षरक्षणाद् धावितौ

(630) ★ विवक्षितस्य अर्थस्य साधनार्थं द्विविधं उदाहरणं, तद्यथा -
(i) यथितं = वास्तविकं
(ii) काल्पितं = काल्पनिकं

PAGE : 95
DATE : / /

तयोः स्वामिनोः x तयोः ~~कश्चनोऽध्वरः~~, अस्थसि पुद्गं अपृच्छत् x वास्तुकः चिन्तयति - घृतबिन्दुमात्रेऽपि पतिते एवं अधिकरणप्रवृत्तिः x चिन्तयित्वा स ~~x~~ प्रव्रज्यां अगृहीत् केवलं च सम्प्राप्नुवत् | उक्तं दर्दिन्द्वारम् | उक्तं एषणा द्वारम्

ग्रासैषणा निक्षेप

(629) ★

(630-4) ★ द्रव्यग्रासैषणा दृष्टांत - (काल्पित उदाहरण) - कोपि एकः मत्स्यबंधी मत्स्यग्रहणार्थं सरो गतवान् x तेन मांसपेशीसमेतः गलः सरोप्रदेशे प्रक्षिप्तेx तत्र एकः परिणतबुद्धिः प्रहारक्षः जीर्णमत्स्यः वर्त्तते x स तद्भक्षणार्थं उपागत्य यत्नतः पर्यन्ते पर्यन्ते सकलं मांसं खादित्वा पुच्छेन च गलं आहत्य दूरं अपचक्राम x मत्स्यबन्धी 'गृहीतो मत्स्य' इति गलं आकृष्टवान् x मत्स्यमांसपेशीरहितं गलं दृष्ट्वा भूयोपि मांसं क्षिप्तेx एवं त्रीन् वारान् मत्स्यः मांसं खादितवान् किन्तु न गृहीतः x अथ मांसे क्षीणे ध्यायन्तं मात्स्यिकं मत्स्यो भणति - किं त्वं एवं चिन्तयसि ? त्वं अदूरीकः नित्यज्जोऽसि, तद्यथा (i) अहं त्रीन् वारान् बलाकाया उन्मुक्तः तथाहि - कदाचिदहं बलाकया गृहीतः x तया मुखे पक्षेपार्थं ऊर्ध्वं उत्क्षिप्तः, ततो मया चिन्तितं - यदि अहं ऋजुः एव पतिष्यामि तर्हि न मे प्राणरक्षणं तस्मात् तिर्यग् पतामि, एवं विचिन्त्य तथैव कृतं, एवं त्रीन् वारान् x (ii) त्रीन् वारान् अहं भ्राष्ट्ररूपे वेलामुखे निपतितोपि दक्षतया शीघ्रं वेलयैव सह निर्गतः x (iii) एकविंशतिवारान् मात्स्यिकेन प्रक्षिप्ते जाले पतितोपि यावन्नाद्यापि स संकोचयति तावत् येनैव पथा प्रविष्टः तेनैव जालाद् निर्गतोऽहं x (iv) एकवारं (सकृद्) मात्स्यिकेन जलह्रदं अन्यत्र संचार्य तस्मिन् ह्रदे पिच्छोदके बहुमत्स्यैः सह अहं गृहीतः x स सर्वान् मत्स्यान् एकत्र पिण्डीकृत्य तीक्ष्णायः शलाकायां ग्रथयति x ततोऽहं दक्षतया स्वयमेव मयः शलाकां वदनेन लगित्वा स्थितः x स मात्स्यिकः कर्दमलिप्तान् मत्स्यान् प्रक्षालयितुं सरसि गतः x तेषु प्रक्षाल्यमानेषु अन्तरं अवज्ञाय इति जले निमग्नवान् अहं x

PAGE :
DATE : / /

× एताहशं मम शठंकुरित्वं ततोपि त्वं मां ग्रहीतुं इच्छसि, अहो तेऽहृीकता।

→ उपनयः - मत्स्यः = साधु, मांस = भक्तपान, मात्स्यिक = रागद्वेषादि × यथा न धार्मिको मत्स्यः उपायशतेन तथा साधुः अपि भक्तादिकं अध्यवहरन्नात्मानं रक्षयेत्।

(635) ★ अप्रशस्त भाव ग्रासैषणा - ५ दोष। 1. संयोजना 2. अतिबहुक आहार 3. अंगार 4. धूम 5. निष्कारण आहार।

(636-8) ★1. संयोजना

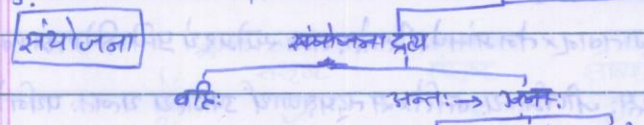

(i) बहिः संयोजना = गोचरी में घूमते हुए रस उत्पादन के लिए द्रव्यों की संयोजना करे eg. दूध में शक्कर डलवाना।

(ii) अभ्यन्तर = वसति में आकर भोजन के समय संयोजना करे।

(a) पात्र में - पात्र में संयोजना करे eg. दूध में शक्कर डाले।

(b) लम्बन (कवल) में - कवल लेते समय eg. रोटी-सब्जी की संयोजना।

(c) वदन में - मुह में कवल डालकर रस के लिए specific कोई वस्तु मुह में डाले eg. खाखरे आदि खाकर फिर गुड़ मुह में डाले।

→ यह सभी संयोजना अप्रशस्त।

(639) ★ भाव संयोजना - रसगृद्धि से द्रव्य संयोजना करता साधु आसक्ति रूप अप्रशस्त भाव से आत्मा को जोड़ता है, वह द्रव्य, भाव से कर्म आत्मा से जुड़ते हैं। कर्म = दीर्घ संसार = दुःख। इस प्रकार द्रव्य संयोजना भाव संयोजना का कारण है।

(640) ★ द्रव्य संयोजना का अपवाद - यदि गोचरी में घी आदि बढ़ गया हो तो संयोजना कर वापरना चाहिए किंतु परठना नहीं चाहिए। क्योंकि परठने में कीड़ी आदि जीवों का व्याघात संभव होने से बहुत बड़ा प्रायश्चित्त होता है।

(641) ★ द्रव्य संयोजना का अपवाद— रस आसक्ति के लिए संयोजना नहीं करना किंतु इन लोगों के लिए छूट है – (i) ग्लान (ii) अभुक्तच्छन्दः = भोजन जिसे रुचता न हो (iii) सुखोचितः = राजपुत्रादि (iv) असंभावितः = असञ्जातसम्यक्परिणामः शैक्षकः। उक्तं संयोजनाद्वारम्।

(642-3) ★ आहार प्रमाण → पुरुष – 32 कवल, स्त्री – 28 कवल, नपुं – 24 कवल।

कवल का प्रमाण = कुक्कुटी के अंडे जितना।

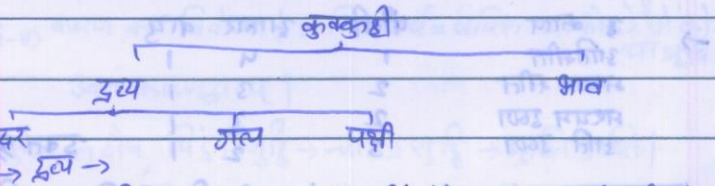

द्रव्य →

(i) उदर कुक्कुटी = बहुत ज्यादा भी नहीं और बहुत कम भी नहीं, ऐसा आहार। उसका 32 वां भाग कवल।

(ii) गल्ल कुक्कुटी = मुख, गाल्य वि. को विकृति नहीं प्राप्त कराता जितना आहार गल्ले में नीचे उतरे वह।

(iii) पक्षी = कुक्कड़ी का अंडा।

→ भाव कुक्कुटी – जितने आहार से उदर कम या ज्यादा न हो, बराबर रहे और ज्ञानदर्शन-चारित्र की वृद्धि हो। भावस्य प्राधान्यख्यापनार्थम्। इसका 32 वां भाग कवल।

→ इस प्रमाण के आहार के सेकुछ कम वापरे तो ऊनोदरी।

(644) (645) ★ 2. **प्रमाणदोष** (i) प्रकाम (ii) निकाम (iii) प्रणीत भक्त वापरना। अथवा अतिबहुशः अतिबहु वापरना।

प्रकाम = 32 कवल से ज्यादा। निकाम = 32 कवल से ज्यादा रोज वापरना।

(645) ★ प्रणीत = घी वि. स्निग्ध पदार्थ।

(646) ★ अतिबहुशः = बार-बार खाना जिससे अतीसार, वमन, मरण हो।

(647) ★ अतिबहुकं = अतिशयेन बहु, दिन में 3 बार 32 कवल से ज्यादा वापरना, भले भूख हो या न हो।

(648) ★ (647) ★ (649) ★ हेनन्तर वापरने के त्याग- (i) द्रव्य से - हित, मित, अल्प (ii) भाव से - एषणीय वापरना

हित = अविरुद्ध द्रव्य वापरना, जिससे रोग का नाश हो। विरुद्ध द्रव्य वापरने से रोग उत्पन्न होते हैं।

(650-4) ★ मित = उदर के 6 भाग करना। 1 भाग Fix वायु के लिए ऊनोदरी।

→ साधारण काल में 2 भाग पानी, 3 आहार, 1 वायु।

→

ऋतु काल	पानी	आहार	वायु
अतिशीत	1	4	1
मध्यम शीत	2	3	1
मध्यम उष्ण	2	3	1
अति उष्ण	3	2	1

उक्तं प्रमाणद्वारम्।

(655-9) ★ 3.4. साङ्गार, सधूम → अंगार = द्रव्य से जली हुई खदिरादि वनस्पति

भाव से राग रूपी अग्नि से जला हुआ चारित्र रूपी ईंधन

→ धूम = द्रव्य से आधे जले काष्ठ संबंधी

भाव से द्वेष रूपी अग्नि से जला हुआ चारित्र रूपी ईंधन।

→ सांगार = अंगार यानि राग सहित जो भोजन वह सांगार भक्त।

सधूम = द्वेष सहित जो भक्त वह सधूम भक्त।

→ सांगार = अहो स्निग्धं, अहो सुसम्भृतं सुरसं सुपक्वं इत्यादि रूप राग से प्रशंसा करते हुए वापरना

सधूम = अहो विरूपं, क्वथितं, अपक्वं अलवणं इत्यादि रूप द्वेष से निन्दा करते हुए वापरना

(660) ★ तपस्वी साधु राग-द्वेष रहित आहार करते हैं। उक्तं साङ्गार सधूम द्वारम्।

(661-2) ★ आहार के 6 कारण — (i) क्षुद्वेदनोपशमाय (ii) वैयावृत्यकरणाय

(iii) ईर्यापथसंशोधनार्थं (iv) प्रेक्षादिसंयमनिमित्तं (v) प्राणधारणार्थं (vi) धर्मचिन्ताऽभिवृद्धिनिमित्तं।

★ 5. कारण – बताए हुए कारण बिना भोजन करना।

(663-4) ★ 6 कारण का विवेचन

(666) ★ आहार न करने के 6 कारण :– (i) ज्वरादौ उत्पन्ने सति (ii) राजस्वजनादि द्वारा उपसर्ग करने पर (iii) ब्रह्मचर्यगुप्तिपालनार्थं (iv) प्राणिदयार्थं (v) तपहेतो: (vi) चरमकाले शरीरव्यवच्छेदार्थं

(665) ★ (vi) कारण का विवेचन

(667-8) ★ (i-v) कारण का विवेचन। प्राणिदयार्थं = बारिश या कोहरे में कोरने न जाए। या भूमि मेंढक से संसक्त होने पर।

उक्तं कारणद्वारम्।

(669) ★ कुल पर दोष, पिंड विशुद्धि → चारित्र शुद्धि → मुक्ति प्राप्ति।

(670) ★ यथा श्रुत-चारित्र आवश्यक योगाः न हीयन्ते तथा अपवादं सेवेत।

(671) ★ सूत्रोक्त रीति से आत्मविशुद्धि से युक्त साधु को और रागद्वेष रहित साधु को अपवाद का सेवन करते हुए जो विराधना होती है, वह भी निर्जरा फल वाली और सिद्धि फल वाली है।

ग्रन्थाग्र 7000।

समाप्ता पिण्डनिर्युक्तिः।

श्री पिण्ड निर्युक्ति Summary

Pg. No.		
1	1.	नामनिक्षेप (पिंड)
2	2.	स्थापना निक्षेप "
2	3.	द्रव्य निक्षेप "
3-4	4.	पृथ्वीकाय - स. अ. मि., अ. करने के ~~प्रयोजन~~ उपाय, अ. के प्रयोजन
4-5-6	5.	अप्काय - " " "
6	6.	वस्त्र प्रक्षालन करने में दोष
7	7.	जू निकालने की विधि
8	8.	जत्थग्रहण विधि
8	9.	प्रक्षालन विधि
8-9	10.	तेउकाय - " " "
9-10	11.	वायुकाय - " " "
10	12.	वनस्पति - " " "
10-11	13.	त्रसकाय - " " "
11	14.	क्षेत्र-काल निक्षेप
11	15.	~~7~~ पिंडैषणा - ~~7~~ पानैषणा
12	16.	भाव निक्षेप
12.	17.	एषणा और उसके निक्षेप
12	18.	गवेषणा और उसके निक्षेप
13	19.	द्रव्य गवेषणा के दृष्टांत और दार्ष्टान्तिक
13	20.	उद्गम, निक्षेप, द्रव्योद्गम के दृष्टांत और दार्ष्टान्तिक
14-15	21.	16 उद्गम दोष

15-25	22.	आधाकर्म - एकार्थक नाम, निक्षेप, दृष्टांत, पार्श्वनिक
25-27	23.	आधाकर्म - साधर्मिक के 12 प्रकार, कल्प्याकल्प्यविधि
27-30	24.	आधाकर्म - अशन-पान-खादिम-स्वादिम की संभावना आदि, स्वपक्ष-परपक्ष
30-31	25.	आधाकर्म - अतिक्रमादि 4 दोष
31-32	26.	" - सात्रासंगादि 4 दोष
33-34	27.	आधाकर्म - अकल्प्य विधि, स्पृष्ट भी अकल्प्य, दृष्टांत
34-36	28.	" - ~~परठने~~ पूयने-परित्ता की विधि और सविधि, दृष्टांत
36-37	29.	" - शुद्धाहार की बुद्धि से ग्रहण किया (अजानते) हुए तो अदोष, दृष्टांत
37-41	30.	औद्देशिक
42-45	31.	पूतिकर्म
45-46	32.	मिश्रजात
46	33.	पात्र प्रक्षालन विधि
46-47	34.	स्थापना
47-49	35.	प्राभृतिका
49-50	36.	प्रादुष्करण
50-52	37.	क्रीत
52-53	38.	प्रामित्य
53-54	39.	परावर्तित
54-55	40.	अभ्याहृत
56-57	41.	उद्भिन्न
57-58	42.	मालापहृत

अ.व. 9, 2072
Kuvala

श्री पंचवस्तुक ग्रंथ Summary.

(कर्ता-श्री हरिभद्र सू.म. स्वोपज्ञ टीका)

[गा. 1593-1714 तक] अनशन स्वीकारने वाले की भावना

गा.1593 संलेखना करने वाला आगमानुसार धर्मध्यानादि योग से आंतर कषायादि भावों को संलेखना (कृश) करते हैं। और परमार्थ की भावना ओं से बोधि के अवंध्यकारणों को बढ़ाते हैं।

अव. भावना –

गा.1594 इस अंतिम समय में भावितात्मा वाले वे अतिशय से संसाररूप महासमुद्र के निर्गुणत्व = असारता को भावित करते हैं।

गा.1595 भवसमुद्र जन्म-जरा-मरण रूप पानी वाला, अनादिमान् = अगाध, संवर्त रूप हिंसक प्राणियों से व्याप्त, जीवों के दुःख का कारण है।

गा.1596 मैं धन्य हूँ, जिससे इस भवसमुद्र में सैकड़ों भव में दुर्लभ ऐसा सद्धर्म रूपी जहाज मेरे द्वारा प्राप्त किया गया।

गा.1597 विधिपूर्वक पालन करते इस धर्मजहाज के प्रभाव से जीव जन्मांतर में भी दुःख की प्रधानता वाली दुर्गति को प्राप्त नहीं करते।

गा.1598 यह सद्धर्म अचिंत्य मुक्ति का साधन होने से अपूर्व चिंतामणि, अकल्पित फल देने से अपूर्व कल्पवृक्ष, रागादि विष का नाश करने से परम मंत्र और अमृत्यु का अवंध्य हेतु होने से परम अमृत्त समान है।

गा.1599 जिनके प्रभाव से मेरे द्वारा धर्म जहाज प्राप्त किया गया और विघ्न बिना पालन किया गया, ऐसे गुर्वादि महानुभावों की सम्यक् वैयावृत्य मैं इच्छता हूँ।

गा.1600 स्वयं पर उपकार नहीं करने वाले जीवों के भी हित में रत जो गुरु यह धर्म जीवों को देते हैं, उन्हें अंतःकरण से नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

गा.1601 भव्यजीवों के लिए हितकारक धर्म सिवाय अन्य कोई वस्तु तीनों लोक में नहीं है क्योंकि धर्म जहाज से ही भव समुद्र पार होता है।

गा.1602 यहाँ भव समुद्र में देवलोकादि सभी स्थान संयोग-वियोगादि सैकड़ों दुःखों से युक्त हैं,

भावना का फल - अकरण नियम तथा अनुबंध ह्रास आदि

गा. 1603 प्रहाकष्ट से प्राप्त हुए मनुष्यजन्म में भी जीव को अत्यंत - 105
-दुःख रूप फल देने वाले संसार समुद्र में रति होती है, इससे ज्यादा कष्ट और क्या -
- हो सकता है?
इसलिए ही वे सभी प्रकार से पाप रूप हैं तथा अत्यंत रौद्र अनुबंध वाले हैं।

गा. 1604-5 इसी प्रकार प्रवचन के सारभूत तथा संवेग उत्पन्न करने वाले सूक्ष्म पदार्थों को विचारे, जिनसे अकरण नियम और अनुबंध ह्रास विशुद्ध फल प्राप्त होते हैं।

उप. भावना का फल -

गा. 1604-5 अकरण नियम - दूसरे पाप में गिराने का प्रयत्न करे तो भी प्रशस्त भावनाओं के चिंतन से जो पाप त्याग स्वयं होता है, वह अकरण का अनुबंध हेतु है।
(अकरणनियम - पाप त्याग के बाद आपत्ति में भी उस पाप का सेवन नहीं करना)

गा. 1606 अनुबंध ह्रास - जो अनुष्ठान शास्त्र से शुद्ध है, पूर्वापर योग से संगत है, तीन कोटी से शुद्ध है, वह अनुष्ठान सुवर्ण घट समान है तथा इष्ट फलदाता यानि मोक्ष की साधना के अनुबंध वाला है। (सोने का घड़ा फूटने के बाद भी काम में आता है,
गा. 1607 जो अनुष्ठान परिशुद्ध नहीं है, वह मिट्टी के घड़े समान असार है तथा मात्र फल साधक है, अनुबंध वाला नहीं है। मिट्टी का " " " काम में नहीं आता)

~~उक्त.~~ ~~सारे की विधि~~

गा. 1608 वे अनाभोग से होने वाले, सूक्ष्म अतिचार/अपवादों को भी प्रतिपक्ष भावना से छोड़ देते हैं।

गा. 1609 इस प्रकार भावना से उल्लासित वीर्य-परिणाम वाले वे कभी श्रेणि तथा केवलज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, जिससे वे अमर हो जाते हैं।

गा. 1610 यदि श्रेणि प्राप्त नहीं करते तो भी संवेग भावना से युक्त मुनि अन्य जन्म में अवश्य सुगति और जिनधर्म तथा बोधि प्राप्त करते हैं। कैसे? →

गा. 1611 यहाँ जिस शुभ भावना से जीव अतिशय भावित होता है, जन्मान्तर में भी उसी प्रकार के भाव से वह युक्त होता है।

गा. 1612 जैसे वासित तिल का तैल भी सुगंधी होता है, वैसे शुभ भाव की वासना के सामर्थ्य से जीव को जन्मांतर में भी बोधि लाभ होता है।

पादपोपगमन अनशन विधि
इंगितमरण अनशन विधि

PAGE :
DATE : / /

अब पादपोपगमन अनशन स्वीकारने की विधि-

गा. 1613 इस प्रकार द्रव्य और भाव से आत्मा को संलेख कर, ग्रहण किए हुए कृत्यकादि वापस देकर, गुर्वादि को संवेग से सम्यक् खमाकर,

गा. 1614 गुर्वादि बड़ील से अन्य को 'संयोग वियोगवाला है, धर्म में उद्यम करना चाहिए' वि. हितशिक्षा देकर

गा. 1615 यथाविधि देव वंदन, गुरु वि. को वंदन कर, गुरु से सभी आहार का पच्चक्खाण लेकर

गा. 1616 आत्मा को समभाव में स्थित कर सिद्धान्तोक्त मार्ग से ही निरीह होकर गिरि की गुफा में जाकर स्वयं पेड़ की चेष्टा रूप पादपगमन स्वीकारे।

गा. 1617 समभाव से सर्वत्र अप्रतिबद्ध वे महात्मा स्थंडित्व भूमि में ठूंठ जैसे सीधे, निश्चेष्ट, वृक्ष समान यावज्जीव खड़े रहे। यावत् वे आँख की पलक भी न हिलाए।

गा. 1618 निश्चलपद (मोक्ष) के परम कारणरूप यह अनशन शुभभाववाले और प्रायः प्रथम संघयण वाले महानुभाव मुनि ही करते हैं।

गा. 1619 वीतराग प्रभु द्वारा यह पादपोपगमन अनशन 2 प्र. को कहा गया है (i) निर्व्याघातवद् = व्याघात बिना काल धर्म होने वाला; (ii) सव्याघातवद् = सिंहादि व्याघात से काल-धर्म होना

गा. 1620 कोई गीतार्थ सिंहादि से व्याघात होने पर आयुष्य बाकी जानकर पादपगमन अनशन स्वीकारे, वह सव्याघातवद् अनशन। पेड़ के (पादपं उपगच्छति = पादपोपगमनं)

अब इंगितमरण की विधि-

गा. 1621 जो मुनि संहनन के अभाव से पादपगमन करने में समर्थ नहीं बने हैं, वे आयु के अनुसार थोड़े काल संलेखना कर

गा. 1622 मन को संवेग से भावित कर, आलोचना से आत्मा को निःशल्य कर, स्वयं की शक्ति अनुसार विधिपूर्वक इंगितमरण या भक्त परिज्ञा करे।

भक्त परिज्ञा अनशन विधि (1)

5 अशुभ भावना
कांदर्पी भावना

PAGE : 107
DATE : / /

गा. 1623 इंगितमरणविधि- दीक्षा से अभी तक के सभी दोषों की आलोचना करे। संघादि अनुसार और आयुष्यानुसार द्रव्य और भाव से संलेखना करे।

गा. 1624 गुरु के पास चारों आहार का पच्चक्खाण अवश्य करे, तीन आहार का नहीं। इंगित= परिमित क्षेत्र में वह इंगित= परिमित चेष्टा भी कर सकते हैं।

गा. 1625 काया से करवट बदल सकते हैं। प्रकृति के अनुसार मात्रु वि. करे या न करे। पाँवों को वि. स्वयं के कार्य अवश्य स्वयं ही करे। धैर्यरूपी बल वाले रहे।

अव. भक्त परिज्ञा विधि-

गा. 1626 तीसरे अनशन रूप भक्त परिज्ञा में भी दीक्षा से लेकर आज तक के दोषों की आलोचना करे। पहले भले ही परलोक प्रति संवेग वाला न हो किंतु अब तो संवेग युक्त वाला बनकर आलोचना ले।

गा. 1627 अनशन स्वीकारने वाले, उत्पन्न बीर्य वाले ये मुनि अशुद्ध, संक्लिष्ट भावनाओं को विशेष छोड़े। उस संक्लेश से आराधना को प्राप्त करे।

गा. 1628 (द्वार) कांदर्पी, कैल्बिषिकी, आभियोगिकी, आसुरी, सम्मोहनी, ये पाँच प्रकार की संक्लिष्ट भावना कही गई है। उन-उन स्वभाव का अभ्यास= भावना।

गा. 1629 जो व्यवहार से साधु होकर भी भाव की मंदता से इन अप्रशस्त भावनाओं में वर्तता है, वह द्रव्य-चारित्र से भी हीन, ऐसा कंदर्पादि उन-उन देवों के प्रकारों में उत्पन्न होता है।

अव. 1. कांदर्पी भावना के 5 प्र.

गा. 1630 (प्रतिद्वार) (i) कंदर्प (ii) कौकुच्य (iii) दर्पशील (iv) हासकर (v) दूसरे को विस्मित करता विस्मापक, ये 5 से युक्त जीव कांदर्पी भावना करता है।

गा. 1631 (i) कंदर्प- अट्टहास्य= मुख विकृत कर जोर से हँसना, स्वयं अनुरूप व्यक्ति के साथ हँसी मजाक करना गर्वादि के साथ भी कठोर वचन- वक्रोक्ति वि. संलाप

कौल्बिषिक भावना

PAGE
DATE / /

करना, कंदर्पकथा (काम कथा) कहना, काम का उपदेश देना, काम की प्रशंसा करना - ये सब जो करता है, ~~वह~~ इसे कंदर्पवाला जानना।

गा. 1632 (ii) कौकुच्य - आँखों की भवें वि. देह के अवयवों, हास्यकारक वचनों द्वारा मोहरूप दोष से ऐसी चेष्टा करे कि देखने वाला जोर-जोर से हँसे, स्वयं जैसे कुछ हुआ ही नहीं वैसे हँसे बिना ही रहे; जो इस प्रकार करता है, वह कौकुच्य वाला है।

गा. 1633 (iii) द्रुतदर्पशीलत्व - जो सोचे बिना जल्दी-जल्दी बोले, शरद्ऋतु में पागल हुए बैल की तरह जल्दी चले, सब काम सोचे बिना जल्दी करे, बैठे-बैठे भी बल और रूप से अभिमान करे, वह द्रुतदर्पशील है।

गा. 1634 (iv) हासकर - बरतन में जैसे दूसरों के छिद्र (खोजना वि. की इच्छा) देखने वाला विचित्र प्रकार के वेषवचनों द्वारा स्वयं को और ~~मात्र~~ दूसरों को हास्य उत्पन्न करने वाला हासकर कहा जाता है।

गा. 1635 (v) विस्मापक - जो मूर्खप्राय ग्राम्यलोगों को इंद्रजालादि कौतुकों द्वारा विस्मित करे, स्वयं विस्मित न हो, वह। (1. कांदर्पी भावना पूर्ण)
प्रतिद्वार गा. 1630 पूर्ण

~~गा. 1634~~ उप. 2. कौल्बिषिक भावना के 5 प्र.

गा. 1636 (प्रतिद्वार) (i) ज्ञान (ii) वीतराग-केवली (iii) गुरु (iv) सभी साधु के अवर्णवाद (v) मायावी।

गा. 1637 (i) ज्ञानावर्णवाद - पृथिवीकाय वि. काय, प्राणातिपातादिनिवृत्ति वि. व्रत, मद्यादि प्रमाद और अप्रमाद; इनका बार-बार एक ही वर्णन आता है इसलिए पुनरुक्ति दोष है। मोक्ष के अभिलाषी को ज्योतिष् और योनिप्राभृत की क्या जरूर? क्योंकि ये तो संसार के कारण है। इस प्रकार बोलना ज्ञान का अवर्णवाद है। कायादि का प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिए अतः शास्त्रों में उपाधि के भेद से बार-बार विराधना न करने का उपदेश है तथा ज्योतिष् वि. शास्त्र शिष्य को अच्छे मुहूर्त में दीक्षा देने और अच्छे मुहूर्त में विशिष्ट आराधना में उपयोगी है,

PAGE : 109
DATE : / /

इस प्रकार सूक्ष्मबुद्धि से विचारना।

गा. 1638 (ii) केवली अवर्णवाद - केवली सभी प्राणी को उपदेश बोध नहीं देते इसलिए वे समवृत्ति वाले नहीं हैं; वे साम्राज्य देशना नहीं देते, गंभीर देते हैं; तथा गुरु को भी गोचरी वि. नहीं देते; वे तो कृतकृत्य ही हैं (भंग में) - इस प्रकार बोलना केवली का अवर्णवाद है।

असंज्ञी और कोरडे गूंग जैसे असंज्ञी जीव किसी के भी द्वारा प्रतिबोधित नहीं होते, गुरु से गुणों में बड़े होनेसे वे सेवा नहीं करते तथा वे वास्तविक कृतकृत्य हैं।

गा. 1639 (iii) धर्माचार्यावर्णवाद - जाति उच्च होवे या न हो तो भी अनेकप्रकार से निंदा करे, सेवा न करे, दोष देखे, गुरु के दोष सबके सामने बोले, उनके प्रतिकूल रहे वि. गुरु का अवर्णवाद है। कल्याणकारण के कारण गुण हैं, जाति नहीं। गुरु के अपमान का अभिनिवेशादि अतिभयंकर दोष हैं।

गा. 1640 (iv) साधु अवर्णवाद - ये साधु तो उपसर्ग सहन नहीं करते किंतु उपसर्ग आते हैं तो अन्य देश में चले जाते हैं; धीरे-धीरे चलते हैं; प्रकृतिसे निष्ठुर होते हैं; गुरु पर कभी रुष्ट कभी तुष्ट होते हैं; गृहस्थों पर वात्सल्य रखते हैं; सब चीज़ का संग्रह करते रहते हैं - इत्यादि अवर्णवाद।

दूसरे को संताप न हो इसलिए वे उपसर्ग सहन नहीं करते, ईर्यासमिति के लिए वे धीरे-चलते हैं (लोकरंजन के लिए नहीं), असंयम में निष्ठुर होते हैं (स्वभाव से नहीं) कषाय अल्प होनेसे रुष्ट-तुष्ट नहीं होते (हो तो भी अल्प), धर्मस्वीकार कराने के लिए गृहस्थों पर वात्सल्य रखते हैं तथा उपकरण बिना साधना नहीं होती इसलिए वे उपकरण रखते हैं।

गा. 1641 (v) मायावीश - गुण के अभाव रूप स्वयं के खराब स्वभाव को छुपाए, अन्य के विद्यमान गुणो

आभियोगिकी भावना

को भी ढांके, स्वचित्त के दोष से चोर जैसे सर्वत्र शंका वाला, सर्व वस्तु में छुपी प्रवृत्ति वाला मायावी होता है। (प्रति द्वार गा. 1636 पूर्ण)

प्र. 2. आभियोगिकी भावना के 5 प्र.-

गा. 1642 (प्रति द्वार) जो ऋद्धि-रस-साता गौरव वाला बनकर कौतुक (i) भूतिकर्म (ii) प्रश्न (iii) प्रश्नाप्रश्न (iv) निमित्त से आजीविका चलाता है, वह आभियोगिकी भावना वाला है। (v)

गा. 1643 (i) कौतुक- बालक को नहलाना, हवन-होम करना, मंत्र तंत्र करना, उस प्रकार की व्याधि के क्षय के लिए क्षार दहन करना, द्रव्ययोग मिश्रित धूप करना, स्त्री वि. को अनार्यादि का वेष पहनाना, प्रभाव सेन्द्रजालादि दिखाना, अनिष्ट की शांति के लिए थू-थू करना, मंत्रादि से बांधना आदि।

गा. 1644 (ii) भूतिकर्म- भस्म, गीली मिट्टी या धागे से चारों तरफ लपेटने स्वरूप भूतिकर्म प्रसिद्ध है। यह घर, शरीरादि के रक्षण के लिए वशीकरण किया जाता है।

गा. 1645 (iii) प्रश्न- देवता को पूछना वि. अथवा स्वयं और दूसरे लोग अंगुठे, कपड़े, दर्पण, खड्ग, पानी या दिवाल पर कुछ देखे।

गा. 1646 (iv) प्रश्नाप्रश्न- स्वप्न में विद्यादेवी द्वारा कहा हुआ पूछने वाले को कहना, इक्षणिका योगिनी डोंबी नाम से प्रसिद्ध है, घंटिका यक्ष द्वारा कहा हुआ घंटी में रहकर कहना वि.।

गा. 1647 (v) निमित्त- त्रि. भूत-भवि-वर्तमान। जो अधिकरण सहित है, वह अशुभ निमित्त और अधिकरण रहित है, वह शुभ निमित्त।

गा. 1648 गौरव के लिए ये भूतिकर्मादि करते मुनि आभियोगिक कर्म बांधते हैं जिससे उन्हें देवतादि का अभियोग करना पड़ता है। जो विशिष्ट ज्ञानी होकर निःस्पृह होकर कर्मादि करता है, वह विराधक नहीं किंतु आराधक होता है और उच्च गोत्र कर्म बांधता है क्योंकि वह तीर्थ की उन्नति करता है।
(प्रति द्वार गा. 1642 पूर्ण)

3-आसुरी भावना
संमोहनी भावना

अब. 4. आसुरी भावना के 5 ड्ग. —

गा. 1649 (प्रतिद्वार) (i) अनुबद्धविग्रह = कलह शील (ii) संसक्त तप = आहारादि के लिए तप करने वाला (iii) निमित्त = मतीतादि (iv) निष्कृप: = कृपा रहित (v) निरनुकम्प: = अन्य को कंपते हुए भी स्वयं अनुकम्पा रहित।

गा. 1650 (i) अनुबद्धविग्रह = सतत कलह करने वाला, अपराधी द्वारा खमाने पर भी कषायोदय से स्वपक्ष (साधु साध्वी) और परपक्ष (गृहस्थ) में प्रसन्न नहीं होता, पश्चात्ताप नहीं करता।

गा. 1651 (ii) संसक्ततप = आहार-उपधि-शय्या में जो सदा आसक्त होकर उन्हें प्राप्त करने के लिए ही जो तप करे वह।

गा. 1652 (iii) निमित्तादेशी - निमित्त उ.प. (मू. भवि. व.) | तीनों के विषय भेद से दुःख-सुख दुःख, जीवन मरण, लाभ अलाभ | उ. गा. 1647 में आभियोगिकी भावना में भी निमित्त क्यों कहा? उ. यदि निमित्त कथन तीव्र अभिमान पूर्वक हो तो आसुरी भावना, अभिमान बिना हो तो आभियोगिकी भावना।

गा. 1653 (iv) निष्कृप - किसी वस्तु में आसक्त होकर 6 काय जीवों पर घृणा बिना चले और किसी के कहने पर पश्चात्ताप भी न करे।

गा. 1654 (v) निरनुकम्प - जो किसी हेतु से दूसरे को काँपता हुआ देखकर भी क्रूरता से स्वयं कंपता नहीं है, वह वीतरागों द्वारा निरनुकंप कहा गया है।

(प्रतिद्वा. गा. 1649 पूर्ण)

~~गा. 1650~~ अब. संमोहनी भावना के 5 ड्ग. -

गा. 1655 (प्रतिद्वार) (i) उन्मार्ग देशक (ii) मार्ग दूषक (iii) मार्ग विप्रतिपत्ति वाला (iv) स्वयं में रहे मोह से (v) दूसरे को मोहित कर संमोहनी भावना करता है।

गा. 1656 (i) उन्मार्ग देशक - पारमार्थिक ज्ञानादि को दूषित करता हुआ, विपरीत धर्ममार्ग का उपदेश देने वाला स्व-पर दोनों का अहित करता है।

गा. 1657 (ii) मार्गदूषक - जो पारमार्थिक ज्ञानादि को और मार्ग में स्थित साधुओं का दूषित करता है वह अवद्य जीव पापी मार्गदूषक है।

भावनाओं के फल

भक्तपरिज्ञा अनशन विधि (ii)

गा. 1658 (iii) मार्गविप्रतिपत्ति- जो ज्ञानादि मार्ग को स्वकल्पित तर्कों से दूषित कर, उन्मार्ग स्वीकारता है, वह। एकदेश से

गा. 1659 (iv) मोह- जिससे विचित्ररूप से दूषित मति वाला जीव ज्ञान और चारित्र के गहन भेदों में मुंझे और परतीर्थिकों की बहुविध ऋद्धि देखकर जिससे मुंझे, वह मोह।

गा. 1660 (v) दूसरे को मोहित कर- जो अन्यप्राणी को सत्य युक्ति या मिथ्या युक्तियों से अन्यधर्म में मोहित करता है, ~~वह~~ उस जीव का भी यहाँ इस भावना में ग्रहण किया जाता है। (द्वार गा. 1628 पूर्ण)

अव. इन भावनाओं का फल-

गा. 1661 इन भावनाओं को भावित कर जीव कंदर्पादि दुर्गतिदेव में जाते हैं और वहाँ से च्युत होकर अनन्त संसार समुद्र में भटकते हैं।

अव. गा. 1627 के साथ जोड़ते हैं-

गा. 1662 चारित्र में विघ्न भूत इन भावनाओं को यह अनशनी विशेष से छोड़े और इनके निरोध से सम्यक् चारित्र प्राप्त करे।

गा 1663-69 पूर्वपक्ष- ये भावनाएँ चारित्र में विघ्नरूप नहीं हैं क्योंकि गा. 1629 में आपने कहा कि ये भावनाएँ द्रव्यचारित्री में हो सकती हैं।

उत्तर- व्यवहार नय से चारित्र हो सकता है क्योंकि कोई जीव संक्लेश बिना भी सेवन कर सकता है। निश्चय नय से चारित्र नहीं हो सकता। चर्चा।

अव. भक्त परिज्ञा की शेष विधि- (गा. 1626-7 से चालू)

गा. 1670 इन भावनाओं का प्रसंग यहाँ पर्याप्त है। अब सर्वनय से विशुद्ध ऐसा भक्तपरिज्ञा का विधान संक्षेप से कहूँगा।

गा. 1671 आत्मालोचना कर, संयम में उद्यत होकर, संघयणादि अनुसार उचित संलेखना कर, समाधि अनुसार गुरु के पास त्रिविध या चतुर्विध आहार का पच्चक्खाण करे।

गा. 1672 करवद्ध वंदना और स्वयं ही करे। यदि स्वयं असमर्थ हो तो आसक्ति रहित बनकर स्वयं को समाधि उत्पन्न करने वाला कृत्य अन्य वैयावृत्य-कर से भी कराए

गा. 1673 अतिशय आर्द्र अंतःकरण वाले, परम संवेग वाले वे मुनि जिनवचन से सभी जीवों में मैत्री, गुणाधिक में प्रमोद, क्लिष्ट जीवों में कारुण्य और अविनीत जीवों में माध्यस्थ भावना अत्यंत तीव्र भाव वाले होकर भावित करे।

अब. शरीर की समाधि के लिए प्रयत्न करे -

गा. 1674 शुभध्यान से धर्म होता है। किंतु अपने को शुभध्यान से ही देह समाधि से ही होता है। इसलिए धर्म को पीड़ा न हो इस तरह देह समाधि में प्रयत्न करना चाहिए।

गा. 1675 अन्यथा सर्व जघन्य चेष्टा संघयण होने पर स्थिरता और धैर्य से रहित दुर्बल मन वाले को देह की असमाधि में शुभध्यान कैसे हो!

गा. 1676 शुभ ध्यान के अभाव में देह की असमाधि वाले जीव की लेश्या भी अवश्य अशुभ होगी। उससे अशुभ लेश्या से जन्मांतर में भी वह अशुभ लेश्या वाले भव में ही उत्पन्न होता है। जिससे यह महान् अनर्थ होता है।

गा. 1677 इसलिए गीतार्थ के द्वारा श्रुत की आज्ञा से सर्व प्रयत्नों द्वारा शुभ ध्यान ही अनशनी को संपादित करना चाहिए।

गा. 1678 वह अनशनी भी सर्वत्र अप्रतिबद्ध होकर तथा आज्ञा परतंत्र होकर दुर्लभ प्राप्ति वाले चारित्र के भाव का नाश न हो इसलिए ही वह क्रिया अन्य से करवाए।

गा. 1679 क्रिया अन्य के पास कराने पर भी वह अदीन हो, जिनवचन में एक निष्ठ हो और संसार से विरक्त संविग्न हो तो परमार्थ से आराधक कहा गया है।

गा. 1680 क्योंकि इस प्रकार का जीव प्रायः भाव से संविग्न पाक्षिक ही होता है। जो

संविग्न पाक्षिक और असंविग्न पाक्षिक

असंविग्न पाक्षिक होता, वह चरम काल में भी चारित्ररत्न प्राप्त नहीं करता।

अव. संविग्न पाक्षिक का स्वरूप-

गा. 1681 संविग्न पाक्षिक शिथिलचारी होते हैं, प्रमाद से अल्प कार्यादि के भोग में प्रवृत्त होते हैं किंतु चित्त से तो धर्म में ही तिप्त होते हैं। जैसे किसी स्त्री का पति परदेश गया है, तब उसे परपुरुष में कभी राग हो गया, स्वल्पकाल के लिए ही उसका संग भी हुआ, बाकी समय वह दानादि में प्रवृत्त रहती है तो भी उसका चित्त परपुरुष में ही रहता है जिससे उसे पापबंध चालू रहता है तथा दानादि धर्म का फल अल्प ही मिलता है। इसी प्रकार संविग्न पाक्षिक भी मात्र काय से असमंजस में प्रवृत्त किंतु भाव से धर्म में रक्त, धार्मिक ही मानना चाहिए।

गा. 1682 धर्मविषयक भाव से ही वह अंत समय में शुभभाव के उत्कर्षविशेष से विरति भाव प्राप्त करता है।

अव. असंविग्न पाक्षिक का स्वरूप-

गा. 1683 जो क्लिष्ट चित्त वाला है, संयम निरपेक्ष है, अनर्थदंड में आसक्त है और वेश का उपघात करने वाला है, वह अंत में भी विरति रत्न प्राप्त नहीं करता।

गा. 1684 प्र. साधु कैसे संक्लिष्ट चित्त वि. दोष वाला होता है? उ. भारे कर्म से तथा वह द्रव्य साधु होता है)

गा. 1685 भारीकर्म से प्रमाद होता है और प्रमाद अति रौद्र पाप है जिसके कारण अनेक पृथ्वी भी अनंतकाय वनस्पति में है।

अव. इसी का कारण बताते हुए ज्ञान-दर्शन-चारित्र की दुर्लभता कहते हैं-

गा. 1686 यथास्थित पदार्थ का व्यवसायि ज्ञान दुःख से प्राप्त किया जाता है। वह प्राप्त करने के बाद भी 'वह इसी प्रकार है' ऐसी भावना (श्रद्धा) दुःख से होती है। भावितमति वाला जीव भी शब्दादि विषयों से दुःख से ही विरागी

होता है क्योंकि शब्दादि विषयों की प्रवृत्ति अनादि काल से आत्मसात् है।

गा॰ 1687-8 अन्य लिंगी और अभव्य-मिथ्यात्वी द्रव्य लिंगी वाले भी दीक्षा लेने से विशेष चित्तादि दोष वाले हो सकते हैं। समर्थन।

अव. भक्तपरिज्ञा की शेष विधि (गा॰ 1678 के बाद)

गा॰ 1689 इस अनशन के अधिकार में आहार त्याग उपलक्षण है। उपलक्षण से अन्य वस्तुओं को भी वोसिराए। उपयोग पूर्वक सूक्ष्म मिथ्यात्वादि भाव शल्य भी छोड़े।

गा॰ 1690 जो सभी असद् अभिनिवेश के त्याग से शुद्ध भाव वाला होकर इस समय में संवेग के अतिशय से पूर्व के आत्मा स्वयं के आत्मा को वर्तमान में अत्यंत अनुशास्ते, वह तीर्थंकर-गणधरों द्वारा आराधक कहा गया है।

गा॰ 1691 इसलोक और परलोक में अप्रतिबद्ध, जीवन-मरण में मध्यस्थ जो चरण-परिणाम युक्त है, वह आराधक है।

~~गा॰ 1692~~ अव. इसका फल-

गा॰ 1692 वह चारित्र परिणाम के प्रभाव से शैथिल्य विहार से उत्पन्न पूर्व दुष्कृत कर्मों को खपाकर जात्यादि दोष रहित विशुद्ध जन्म में उत्पन्न होता है और वहाँ भी दीक्षा के योग्य होता है।

अव. तीन प्रकार के आराधक कहते हैं-

गा॰ 1693 यह आराधक लेश्या के भेद से उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य 3 प्रकार का होता है। इन भेदों का विशेष कहता हूँ -

गा॰ 1694 जो सर्वोत्तम शुक्ल लेश्या के उत्कृष्ट विशुद्ध अंश रूप परिणमित होकर मरता है, वह अवश्य उत्कृष्ट आराधक होता है तथा अल्पसंसारी होता है।

आराधना का फल
5 वस्तुओं का महत्त्व

गा.1695 जो शुक्ल लेश्या के उत्कृष्ट भेद को छोड़कर शेष भेद और पद्म लेश्या के कोई भी भाव का प्राप्त कर मरता है, वह मध्यम आराधक है।

गा.1696 तेजो लेश्या के अंशों को प्राप्त कर जो मरता, वह जघन्य आराधक।

गा.1697 यहाँ आराधक मात्र लेश्या से नहीं जानना किंतु जो सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र से युक्त है, वही आराधक जानना क्योंकि मात्र लेश्या तो अभव्य देव को भी होती है। जीव जो लेश्या में मरता है, वही लेश्या सहित उत्पन्न होता है।

गा.1698 आराधक जीव दुष्कृत कर्म खपाकर विशुद्ध जन्म में उत्पन्न होता है और फिर से चारित्र का योग भी होता है।

अव. आराधना का प्रधान फल-

गा.1699 जीव इस प्रकार आराधना कर सात-आठ भव के पहले यानि 3-4 भव में ही सकल लोक के मुकुट समान मुक्ति में अवश्य जाता है।

गा.1700 वहाँ जाकर सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, समाबाधा की निवृत्ति से निरुपम सुख वाले, जन्मादिदोष रहित, सदा काल वहीं रहते हैं।

सव. शास्त्र का उपसंहार-

गा.1701 इन पाँच वस्तुओं की सूत्रानुसार सम्यक् आराधना कर भूतकाल में अनंत जीव सिद्ध हुए हैं। संस्कारों सहित ~~अष्ट~~ कर्मों से रहित हुए।

गा.1702 इन 5 वस्तुओं की सूत्रानुसार सम्यक् आराधना कर वर्तमान काल में (अंतर्मुहूर्तादि में) सभी समय क्षेत्र यानि $2\frac{1}{2}$ द्वीप में सामान्य से संख्येय जीव सिद्ध हो रहे हैं।

गा.1703 इन 5 वस्तुओं की सूत्रानुसार सम्यक् आराधना कर पूर्व जैसे ही भविष्य में भी सर्वज्ञवचन के प्रामाण्य से निश्चय ही अनंत जीव सिद्ध होंगे।

साधु को उपदेश
परलोक में आगम प्रमाण
उपसंहार

PAGE : 117
DATE : / /

गा. 1704 इन वस्तुओं की आराधना कर तीनों काल में सामान्य से बहुत जीव संसार की वृद्धि करने वाले हुए।

अब. साधु को उपदेश देते हैं –

गा. 1705 इस प्रकार हित अहित को जानकर इन पंच वस्तु की आराधना में प्रयत्न करना चाहिए। संसार समुद्र में अन्य कोई उपाय नहीं है।

गा. 1706 भव्य जीवों की आराधना में प्रयत्न का मूल श्रद्धादि भावना से होने वाला आगम पारतंत्र्य ही है।

गा. 1707 परलोकगामी धर्म में आगम सिवाय अन्य कोई प्रमाण नहीं है इसलिए कदाग्रह छोड़कर आगम में प्रयत्न करना चाहिए अर्थात् जिज्ञासा, श्रवण, अनुष्ठानों में यत्न करना चाहिए। अगीतार्थ की आचरणा नहीं करना चाहिए।

अब. इसी का अनर्थ बताते हैं –

गा. 1708 अन्यथा आगमबाह्य आचरण करने वाले अप्रमाण होते हैं।

गा. 1709 सूत्र में ऐसा कहा है, इस प्रकार कहने पर श्रुतबाह्य आचरण वाला यदि कोई किसी अन्य को आगे करते हैं तो वे तत्त्ववाद के बाहर हैं, धर्म के अधिकारी नहीं हैं।

गा. 1710 श्रुतकालीन बहुश्रुतों का दृष्टांत। चर्चा।

अब. उपसंहार –

गा. 1711 इसलिए मोक्ष की आकांक्षा वाले भव्य जीवों द्वारा वंदनादि सर्व अनुष्ठान सदा प्रमाद का त्यागकर सिद्धांत के अधीन बनकर करना चाहिए।

गा. 1712 इस प्रकार यथाशक्ति थोड़े भी अनुष्ठान करने से श्रद्धा और अनुमोदना द्वारा अन्य भी विशिष्ट अप्रमाद से होने वाले अनुष्ठान (ध्यानादि)

उपसंहार

PAGE :
DATE : / /

भाव प्रवृत्ति से किए गए ही जानना।

अव. ग्रंथ रचना का प्रयोजन -

गा. 1713 इस प्रकार भव विरह को इच्छते मेरे द्वारा यह पंचवस्तुक ग्रंथ विशाल श्रुत समुद्र से स्वस्तयं के अनुस्मरण के लिए उद्धृत किया गया।

गा. 1714 और शिष्यों के हित के लिए गाथाओं का मान गिनकर 1700 गाथा प्रमाण यह ग्रंथ स्थापित किया है।

समाप्ता चेयं पञ्चवस्तुकसूत्रटीका शिष्यहिता नाम। कृतिः धर्मतो याकिनीमहत्तरासूनोः आचार्यहरिभद्रस्य॥

कृत्वा टीकामेनां यदवाप्तं कुशलमिह मया तेन।
मात्सर्यदुःखविरहाद् गुणानुरागी भवतु लोकः॥
ग्रंथाग्रं 1715॥

~~हिन्दीभाषायां अस्य ग्रंथस्य~~
हिन्दीभाषायां अयं ग्रंथस्य भावार्थः लिखितः सूरिरामशतार्धिवर्ष- (जन्म)
-निमित्तम्।

समाप्तिवासरः - अ.व. ॥, वि.स. 2072

स्थानम् - कुंवाला ग्रामः। चि

श्री पंचवस्तुक ग्रंथ Summary

PAGE : 119
DATE : / /

Pg. No.	S.N.	(पंचवस्तुक की नोट में)
1	1.	पंच वस्तु के नाम, वस्तु कहने का कारण
2	2.	(A) प्रव्रज्या विधान वस्तु
2	3.	प्रव्रज्या के निक्षेप और भाव प्रव्रज्या का स्वरूप, आरंभ-परिग्रह का त्याग।
3	4.	गुरु के गुण, गुणवान् गुरु के लाभ
4	5.	अनुवर्तना के गुण, शिष्य के अननुपालन के दोष, अनुवर्तक गुरु के गुण
5-6	6.	शिष्य के गुण, दीक्षा का दुष्करत्व, अयोग्य को दीक्षा देने के दोष
6-8	7.	दीक्षा वय प्रमाण, बाल दीक्षा की चर्चा
8-10	8.	दीक्षा के योग्य क्षेत्रादि, दीक्षार्थी की परीक्षा, दीक्षा विधि
10-11	9.	गुरु की हितशिक्षा, क्रिया संबंधी निश्चय व्यवहार चर्चा
12-14	10.	(B) प्रतिदिन क्रिया वस्तु। प्रतिलेखना विधि, दोष वि.
14-16	11.	प्रमार्जना विधि, दोष, पात्र प्रतिलेखन विधि, दोष।
16-17	12.	भिक्षा, सज्झाय के आदेश, अभिग्रह, 8 गोचर भूमि,
17-19	13.	गोचरी लाने के बाद कायादि परठने, उपाश्रय प्रवेश, चोलपट्ट पहनने, काउस्सग्ग में दोष टालने की विधि।
19-21	14.	आलोचना विधि-दोष, गुरु की योग्य अवस्था, आहार दिखाने की विधि
	15.	मण्डली उपजीवक अनुपजीवक